साधना

संकलन/संपादन

परम पूज्य राष्ट्रसंत गणाचार्य

श्री 108 विरागसागरजी महाराज

प्रकाशक/प्राप्ति स्थल

श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर, जैन विराग विद्यापीठ

बतासा बाजार, भिण्ड (म.प्र.)

प्रसंग : परम पूज्य युगप्रमुख श्रमणाचार्य, राष्ट्रसंत, गणाचार्य श्री 108 डॉ. विरागसागरजी महाराज के राष्ट्रीय रजत आचार्य पदारोहण महोत्सव-वर्ष 2016 के सुअवसर पर

कृति : साधना

लेखक : परम पूज्य युगप्रमुख श्रमणाचार्य, गणाचार्य श्री 108 डॉ. विरागसागरजी महाराज

संस्करण : 2016

प्रतियाँ : 2000

पुण्यार्जक :
1. श्रीमान् प्रदीप दबग्गर- श्रीमती बबीता दबग्गर
   श्रीमान् दीपचंद जैन- श्रीमती अंगूरी जैन
   सुमत जैन, सरिता जैन, पथरिया, जिला-दामोह (म.प्र.)
2. श्रीमान् आदित्य, अमित, श्रीमती राजुल, उदित चौधरी
   श्रीमान् सुनील कुमार जैन, श्रीमती प्रीति चंदेरिया बरायठा
   पथरिया, जिला-दामोह (म.प्र.)

मूल्य : 35.00

प्राप्ति स्थान :
1. श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ
   चैत्यालय मंदिर, बताशा बाजार, भिण्ड (म.प्र.)
   संपर्क सूत्र-पं. वींरेन्द्र जैन, मो. 9754803220
2. आचार्य श्री विरागसागर विद्यापीठ (बी.एड. कॉलेज)
   पुष्प विहार कॉलौनी, बीना- 470113,
   जिला- सागर (म.प्र.) मो. 9425135816
3. विराग फाउण्डेशन
   सी/ओ, श्री अरुण कोटडिया, 11-ए. विक्रम नगर
   सोसायटी, उस्मानपुरा, अहमदाबाद- 380013 (गुज.)
   मो. 9825900124
4. श्री भूपेन्द्र शांतिलाल शाह
   13, वृंदावन सोसायटी, डेरी रोड, मेहसाना-2 (गुज.)
   मो. 9898494914, 9829452020
5. विराग महिला मंच, बोरीवली, मुंबई (महा.)
6. पुष्पा जी, जयपुर (राज.)
7. तिलोक प्रिंटिंग प्रेस, बीकानेर
8. पंकज जैन, विराग युवा मंच, इन्दौर (म.प्र.)

मुद्रक : तिलोक प्रिंटिंग प्रेस, बीकानेर मो. 9314962474/75

जीवन की महत्त्वपूर्ण झांकियाँ
परम पूज्य गणाचार्य
108 श्री विरागसागरजी महाराज

पूर्व नाम	:	अरविन्द जैन (टिन्नू)
जन्म	:	2 मई, 1963, गुरुवार (वैशाख शुक्ला 9, संवत् 2020, पथरिया)
माता-पिता	:	श्रीमती श्यामादेवी जैन (समाधिस्थ पू. श्रमणी आर्यिका विशांतश्री माताजी) ब्र.श्री कपूरचन्दजी जैन (संघस्थ पू.क्षुल्लक श्री 105 विश्ववंद्य सागर जी महाराज)
बहिन	:	श्रीमती मीना जैन, श्रीमती विमला जैन
भाई	:	श्री विजयकुमार, श्री सुरेन्द्रकुमार, बा.ब्र. श्री नरेन्द्र भैयाजी
लौकिक शिक्षा	:	इण्टर मध्यमा (पथरिया, श्री शांति निकेतन, दि.जैन संस्कृत विद्यालय, कटनी, म.प्र.)
क्षुल्लक दीक्षा	:	20 फरवरी, 1980 (फाल्गुन शु. 5 सं. 2036 बुढ़ार, शहडोल म.प्र.)
नामकरण	:	पूज्य क्षु. श्री 105 पूर्णसागरजी महाराज
क्षु. दीक्षा गुरु	:	प.पू. तपस्वी सम्राट आचार्य श्री 108 सन्मतिसागर जी महा.
मुनि दीक्षा	:	9 दिसम्बर, 1983 (मगसर शु. 5 वि.सं. 2040), औरंगाबाद (महा.)
मुनि दीक्षा गुरु	:	प.पू.निमित्तज्ञानी आचार्य श्री 108 विमलसागरजी महाराज
आचार्य पद	:	8 नवम्बर, 1992 (का. शु. 13वि.सं. 2049) रविवार, द्रोणगिरी
संयमी सृजन	:	आचार्य-8, मुनि - 70, गणिनी आर्यिका-4, आर्यिका-64, ऐलक-5, क्षुल्लक -29, क्षुल्लिका-23 कुल - 203

प्रशिष्य	:	100 से अधिक
समाधि सल्लेखनाएँ	:	लगभग 85 एवं अनेक तिर्यंच प्राणी
चातुर्मास	:	1980 से 2016 तक क्रमशः दुर्ग (छत्तीसगढ़), नागपुर (महाराष्ट्र), कारंजा लाड (महाराष्ट्र), कारंजालाड (महाराष्ट्र), नागपुर (महाराष्ट्र), भावनगर (गुजरात), पाँचवा (राज.), निमाज (राज.), जयपुर (राज.), भिण्ड (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.), टीकमगढ़ (म.प्र.), श्रेयांसगिरि (म.प्र.), द्रोणगिरि (म.प्र.), श्रेयांसगिरि (म.प्र.), बीना (म.प्र.), ललितपुर (म.प्र.), मढ़ियाजी (जबलपुर), भिण्ड (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.), शिखरजी (झारखण्ड), गया (बिहार), श्रेयांसगिरि (म.प्र.), भिलाई (छत्तीसगढ़), कारंजालाड (महा.) मूडबिद्री (कर्नाटक), मेलचित्तामूर (तमिलनाडू), उद्गांव (महा.), मुम्बई (महा.), गाँधीनगर (गुजरात), लोहारिया (राज.), अजमेर (राज.), जयपुर (राज.), इन्दौर (म.प्र.), श्रेयांसगिरी (म.प्र.), पथरिया (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.)।
साहित्य सृजन	:	1. बारसाणुवेक्खा ग्रन्थ पर 1100 पृष्ठीय "सर्वोदया" संस्कृत टीका, 2. रयणसार ग्रन्थ पर 1500 पृष्ठीय "रत्नत्रयवर्धिनी" संस्कृत टीका, श्रमण संबोधनी टीका लेखन जारी है, 3. अनेक शोधात्मक, चिन्तनशील, बालकोपयोगी कथा, अनुवाद, गद्य, संपादित साहित्य, जीवनी एवं प्रवचन साहित्य 150 से अधिक ग्रंथ।
पंचकल्याणक	:	लघु वृहद् मिलाकर-67
उपाधियाँ	:	डॉक्ट्रेट आदि 44 से अधिक
सिद्धांत वाचनाएँ	:	धवल ग्रन्थ की 16 पुस्तकें तथा जयधवल ग्रंथ की 6 पुस्तकें, शेष जारी हैं।

गोष्ठियाँ : विद्वत, शिक्षक, प्राचार्य, न्यायाधीश-वकील, डॉक्टर्स, शासनिक।

अहिंसा, शाकाहार एवं व्यसन मुक्ति

अभियान : भिण्ड (म.प्र.), बीना (म.प्र.), भिलाई (छ.ग.), कारंजा (महा.), मेलचित्तामूर (तमिल.), उदगाँव (महा.), गाँधीनगर (गुजरात), लोहारिया (राज.), अजमेर (राज.), जयपुर (राज.), इन्दौर (म.प्र.) श्रेयांसगिरि (म.प्र.), पथरिया (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.), जिसमें 18 लाख से अधिक छात्र-छात्रायें व्यसनमुक्त, शाकाहारी एवं अहिंसा के उपासक बन चुके हैं।

शिविर : प्रतिवर्ष श्री विराग सम्यग्ज्ञान शिविर, प्रतिभा संस्कार शिविर, पूजन प्रशिक्षण शिविर, भक्तामर शिविर, श्रावक संस्कार शिविर आदि।

विशेष प्रवचन : कॉलेज, स्कूल, जेल, न्यायालय, गौशाला, वृद्धाश्रम, गुरुकुल, मुख्य चौराहे आदि पर हुए।

जेल प्रवचन : भिण्ड, टीकमगढ़, दुर्ग, उदयपुर, चित्तौड़गढ़, जयपुर, अजमेर, इन्दौर, पन्ना, दमोह।

न्यायालय प्रवचन: अजमेर

पगविहार : 70,000 किलोमीटर से अधिक।

संघ सम्मेलन : भिण्ड, श्रेयांसगिरी, बीना, ललितपुर, श्रवणबेलगोला, औरंगाबाद, जयपुर।

वृहद् यति सम्मेलन:

एवं युगप्रतिक्रमण जयपुर (200 शिष्य-प्रशिष्य, अन्य साधु भी) श्रमण-श्रमणी की प्राचीन परम्परा की पुनः स्थापना।

भक्ति प्रसून

सबसे बड़ी साधना व तपस्या है- मन को वश में करना। जितने भी तप, व्रत, नियम आदि अनुष्ठान बताए गए हैं, उन सभी का एकमात्र लक्ष्य मन को धर्म में एकाग्र करना है। पर यह आसान नहीं है। उपवास, व्रतादि शक्ति की अपेक्षा रखते हैं, अतः सभी जन तप धारण करने में सक्षम नहीं हो पाते।

अतः मन को वश में करने का सुगम तरीका है- आराध्य की स्तुति व आराधना। हमारे बड़े-बड़े महानाचार्यों ने भी प्रभु स्तुति का आश्रय लिया है। श्री मानतुंगाचार्य ने स्तुति की महिमा बताते हुए अपने भक्तामर स्तोत्र में लिखा है-

त्वत्संस्तवेन भव संतति सन्निबद्धम्,
पापं क्षणात्क्षय मुपैति शरीर भाजाम्।
आक्रांत लोक मलि नील मशेष माशु,
सूर्यांशु भिन्न मिव शार्वर मन्धकारम्।।

भौं रे के समान अगाढ़ अंधकार भी जैसे सूर्य के उदित होने पर नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार प्राणियों के भव-भव के पाप-कर्म भी क्षण में क्षय को प्राप्त हो जाते हैं।

बहुत से साधुजन एवं श्रावकजन आज भी विभिन्न

स्तोत्रों एवं ग्रथों के पाठ नियम से करते हैं। ये स्तोत्र एवं ग्रंथ पाठ नये-नये चिंतन की ओर प्रेरित करते हैं। चिंतन धीरे-धीरे ध्यान का अभ्यास कराते हैं और ध्यान साक्षात् मोक्ष का हेतु है।

अतएव इस पवित्र भावना से परम उपकारी गुरूवर राष्ट्रसंत, गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज ने हिंदी के महत्वपूर्ण स्तोत्र एवं पाठों का संकलन एवं सम्पादन- 'साधना' नामक कृति में किया था जिसका परिवर्धित रूप आपके सामने प्रस्तुत है। जिसके लिए हम उनके अनन्य आभारी हैं और रहेंगे। इस कृति को पाकर मुझे अत्यंत हर्ष हो रहा है, आपको भी यह कृति परमानंद प्रदान करेगी मुक्ति का हेतु बनेगी, इसी पुनीत भावना के साथ।

परम पूज्य गुरूदेव राष्ट्रसंत, गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज के श्री चरणों में कोटिशः नमोस्तु! नमोस्तु! नमोस्तु!

गुरु गुणानुरागी

डॉ. भाविक शाह (लंदन)

अनुक्रमणिका

दर्शन पाठ	:	11
दर्शन स्तुति	:	12
दर्शन स्तुति	:	13
दर्शन-स्तुति (सकल ज्ञेय)	:	14
संकट मोचन विनती	:	16
निर्वाणकाण्ड (भाषा)	:	21
भक्तामर स्तोत्र (हिन्दी)	:	23
बाहुबली स्तुति	:	31
बारह भावना	:	33
विरक्ति भावना	:	38
बारह भावना	:	41
स्तवन	:	43
मेरी भावना	:	48
दुःख हरण विनती	:	50
मेरी अभिलाषा	:	53
आध्यात्मिक भजन	:	55
इष्ट प्रार्थना	:	56
छहढाला	:	57
सामायिक पाठ	:	70
सामायिक पाठ	:	73
	:	73
परमात्म द्वात्रिंशतिका	:	73
सामायिक पाठ	:	79
(श्री पं. महाचन्दजी कृत)	:	79
समाधि भावना	:	85
समाधि मरण	:	86
समाधिमरण	:	95

(पं. द्यानतरायजी)	:	95
(चाल योगीरासा)	:	95
अंतिम भावना	:	97
समाधि भक्ति	:	99
आलोचना पाठ	:	101
स्तुति	:	104
पार्श्वनाथ स्तोत्र	:	105
श्रावक प्रतिक्रमण	:	106
इष्ट छत्तीसी	:	116
पंचनमस्कार मंत्र का माहात्म्य	:	122
गुरु स्तुति	:	125
आत्म-कीर्तन	:	127
जिनवाणी स्तुति	:	128
श्री पद्मप्रभु चालीसा	:	133
श्री शांतिनाथ चालीसा	:	137
श्री पार्श्वनाथ चालीसा	:	141
श्री महावीर चालीसा	:	143
स्वरुप सम्बोधन	:	147
देवागम स्तोत्र	:	149
समाधितन्त्रम्	:	158
अनुप्रेक्षा	:	167
लघु तत्त्वार्थ सूत्र	:	173
आलाप-पद्धति	:	177
परीक्षामुखसूत्राणि	:	194
नित्य नैमित्तिक जाप	:	206
दिन का चौघड़िया	:	209
समाधि संस्कार विधि	:	219

णमो अरिहंताणं,
णमो सिद्धाणं,
णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं,
णमो लोए सव्व साहूणं।

एसो पंच णमो यारो, सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवई मंगलम्।।

चत्तारि मंगलं- अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा- अरिहन्ता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा साहू लोगुत्तमा, केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

दर्शन पाठ
(कविवर बुधजन कृत)

प्रभु पतित-पावन मैं अपावन, चरन आयो सरन जी।
यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरन जी।।1।।
तुम ना पिछान्या आन मान्या, देव विविध प्रकार जी।
या बुद्धि सेती निज न जान्यो, भ्रम गिन्यो हितकार जी।।2।।
भव विकट वन में करम बैरी, ज्ञानधन मेरो हर्‍यो।
तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट-गति धरतो फिरयो।।3।।
धन घड़ी यो धन दिवस यो ही, धन जनम मेरो भयो।
अब भाग्य मेरो उदय आयो, दरश प्रभु जी को लख लयो।।4।।
छवि वीतरागी नग्न मुद्रा, दृष्टि नासा पै धरैं।
वसु प्रातिहार्य अनन्त गुण युत, कोटि रवि छवि को हरैं।।5।।
मिट गयो तिमिर मिथ्यात्व मेरो, उदय रवि आतम भयो।
मो उर हरष ऐसो भयो, मनु रंक चिन्तामणि लयो।।6।।
मैं हाथ जोड़ नवाऊँ मस्तक, वीनऊँ तुम चरण जी।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहु तारन-तरन जी।।7।।
जाचूँ नहीं सुरवास पुनि नर राज परिजन साथ जी।
'बुध' जाचहूँ तुव भक्ति भव-भव, दीजिये शिवनाथ जी।।8।।

✦ ✦ ✦

दर्शन स्तुति

अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया।
अब तक तुमको बिन जाने, दुख पाये निज गुण हाने।।
पाये अनंते दुख अब तक, जगत को निज जानकर।
सर्वज्ञ भाषित जगत हितकर, धर्म नहीं पहचान कर।।
भव बन्ध कारक सुख प्रहारक, विषय में सुख मानकर।
निज-पर विवेचक ज्ञानमय सुख, निधि-सुधा नहीं पानकर।।1।।
तव पद मम उर में आये, लखि कुमति विमोह पलाये।
निज ज्ञान कला उर जागी, रुचि पूर्ण स्वहित में लागी।।
रुचि लगी हित में आत्म के, सत्संग में अब मन लगा।
मन में हुई अब भावना, तव भक्ति में जाऊँ रंगा।।
प्रिय वचन की हो टेव गुणिगण, गान में ही चित पगे।
शुभ शास्त्र का हो नित मनन, मन दोष वादन तैं भगै।।2।।
कब समता उर में लाकर, द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर।
ममतामय भूत भगाकर, मुनिव्रत धारूँ वन जाकर।।
धरकर दिगम्बर रूप कब, अठ-बीस गुण पालन करूँ।
दो-बीस परिषह सह सदा, शुभ धर्म दश धारण करूँ।।
तप तपूँ द्वादश विधि सुखद नित बंध आस्रव परिहरूँ।
अरु रोकि नूतन कर्म संचित, कर्म रिपु को निर्जरूँ।।3।।
कब धन्य सुअवसर पाऊँ, जब निज में ही रम जाऊँ।
कर्तादिक भेद मिटाऊँ, रागादिक दूर भगाऊँ।।
कर दूर रागादिक निरंतर, आत्म को निर्मल करूँ।
बल ज्ञान दर्शन सुख अतुल, लहि चरित्र क्षायिक आचरूँ।।
आनंद कंद जिनेन्द्र बन, उपदेश को नित उच्चरूँ।
आवै अमर कब सुखद दिन, जब दुःखद भव सागर तरूँ।।4।।

✦ ✦ ✦

दर्शन स्तुति

अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया।
अब तक तुमको बिना जाने, दुख पाये निज गुण हाने।।
पाये अनंते दुख अब तक, जगत को निज जानकर।
सर्वज्ञ भाषित जगत हितकर, धर्म नहीं पहचान कर।।
भव बन्ध कारक सुख प्रहारक, विषय में सुख मानकर।
निज-पर विवेचक ज्ञानमय सुख, निधि-सुधा नहीं पानकर।।1।।
तव पद मम उर में आये, लखि कुमति विमोह पलाये।
निज ज्ञान कला उर जागी, रुचि पूर्ण स्वहित में लागी।।
रुचि लगी हित में आत्म के, सत्संग में अब मन लगा।
मन में हुई अब भावना, तव भक्ति में जाऊँ रंगा।।
प्रिय वचन की हो टेव गुणिगण, गान में ही चित पगे।
शुभ शास्त्र का हो नित मनन, मन दोष वादन तैं भगै।।2।।
कब समता उर में लाकर, द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर।
ममतामय भूत भगाकर, मुनिव्रत धारूँ वन जाकर।।
धरकर दिगम्बर रूप कब, अठ-बीस गुण पालन करूँ।
दो-बीस परिषह सह सदा, शुभ धर्म दश धारण करूँ।।
तप तपूँ द्वादश विधि सुखद, नित बंध आस्रव परिहरूँ।
अरु रोकि नूतन कर्म संचित, कर्म रिपु को निर्जरूँ।।3।।
कब धन्य सुअवसर पाऊँ, जब निज में ही रम जाऊँ।
कर्तादिक भेद मिटाऊँ, रागादिक दूर भगाऊँ।।
कर दूर रागादिक निरंतर, आत्म को निर्मल करूँ।
बल ज्ञान दर्शन सुख अतुल, लहि चरित्र क्षायिक आचरूँ।।
आनंद कंद जिनेन्द्र बन, उपदेश को नित उच्चरूँ।
आवै अमर कब सुखद दिन, जब दुःखद भव सागर तरूँ।।4।।

✦ ✦ ✦

दर्शन-स्तुति (सकल ज्ञेय)

(पं. दौलतराम जी कृत)

दोहा- सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानन्द रस लीन।
सो जिनेन्द्र जयवन्त नित, अरि रज रहस विहीन।।1।।

जय वीतराग विज्ञान पूर, जय मोह तिमिर को हरन सूर।
जय ज्ञान अनन्तानन्त धार, दृग सुख वीरज मण्डित अपार।।2।।

जय परम शांति मुद्रा समेत, भवि जन को निज अनुभूति देत।
भवि भागन वच जोगे वशाय, तुम धुनि ह्वै सुनि विभ्रम नशाय।।3।।

तुम गुण चिंतन निज पर विवेक, प्रगटै विघटै आपद अनेक।
तुम जगभूषण दूषण वियुक्त, सब महिमा युक्त विकल्प मुक्त।।4।।

अविरुद्ध शुद्ध चेतन स्वरूप, परमात्म परम पावन अनूप।
शुभ अशुभ विभाव-अभाव कीन, स्वाभाविक परणतिमय अछीन।।5।।

अष्टादश दोष विमुक्त धीर, स्व चतुष्टय मय राजत गम्भीर।
मुनि गणधरादि सेवत महंत, नव केवल लब्धि रमा धरन्त।।6।।

तुम शासन सेय अमेय जीव, शिव गये जाहिं जैहैं सदीव।
भवसागर में दुख छार वारि, तारन को और न आप टारि।।7।।

यह लखि निज दुख गद हरण काज, तुम ही निमित्त कारण इलाज।
जानें तातैं मैं शरण आय, उचरों निज दुख जो चिर लहाय।।8।।

मैं भ्रम्यो अपन पो बिसरि आप, अपनाये विधि फल पुण्य पाप।
निज को पर को करता पिछान, पर में अनिष्टता इष्ट ठान।।9।।

आकुलित भयो अज्ञान धारि, ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि।
तन-परणति में आपो चितार, कबहूं न अनुभवो स्वपद सार।।10।।

तुमको विन जाने जो क्लेश, पाये सो तुम जानत जिनेश।
पशु-नारक नर-सुर गति-मझार, भव धर-धर मरयो अनंत बार।।11।।

अब काल लब्धि बल तैं दयाल, तुम दर्शन पाय भयो खुशाल।
मन शांत भयो मिटि सकल द्वंद्व, चाख्यो स्वातम रस दुख निकंद।।12।।

तातैं अब ऐसी करहु नाथ, बिछुरै न कभी तुम चरण साथ।
तुम गुणगण को नहिं छेव देव, जग तारन को तुम विरद एव।।13।।

आतम के अहित विषय कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय।
मैं रहूँ आप में आप लीन, सो करो होऊँ ज्यों निजाधीन।।14।।

मेरे न चाह कछु और ईश, रत्नत्रय निधि दीजै मुनीश।
मुझ कारज के कारन सु आप, शिव करहु हरहु मम मोह ताप।।15।।

शशि शांति करन तप हरन हेत, स्वयमेव तथा तुम कुशल देत।
पीवत पीयूष ज्यों रोग जाय, त्यों तुम अनुभवतैं भव नशाय।।16।।

त्रिभुवन तिहुँ काल मंझार कोय, नहिं तुम बिन निज सुखदाय होय।
मो उर यह निश्चय भयो आज, दुख जलधि उतारन तुम जिहाज।।17।।

दोहा

तुम गुणगण मणि गणपति, गणत न पावहिं पार।
'दौल' स्वल्पमति किम कहैं, नमूं त्रियोग सम्हार।।18।।

✦ ✦ ✦

विपत्तियों की परवाह करने वाला व्यक्ति कभी सफल नहीं हो सकता है।

संकट मोचन विनती

(पं. वृन्दावन जी)

हे दीनबंधु श्रीपति करुणानिधान जी।
यह मेरी विथा क्यों न हरो बार क्या लगी।।टेक।।

मालिक हो दो जहान के जिनराज आप ही।
एबो हुनर हमारा कुछ तुमसे छिपा नहीं।।
बेजान में गुनाह मुझसे बन गया सही।
ककरी के चोर को कटार मारिये नहीं।।हे.।।1।।

दुखदर्द दिल का आपसे जिसने कहा सही।
मुश्किल कहर बहर से लिया है भुजा गही।।
जस वेद औ पुरान में प्रमान है यही।
आनंदकंद श्रीजिनेंद देव है तुही।।हे.।।2।।

हाथी पै चढ़ी जाती थी सुलोचना सती।
गंगा में ग्राह ने गही गजराज की गती।।
उस वक्त में पुकार किया था तुम्हें सती।
भय टार के उबार लिया है कृपापती।।हे.।।3।।

पावक प्रचंड कुंड में उमंड जब रहा।
सीता से शपथ लेने को तब राम ने कहा।।
तुम ध्यानधार जानकी पग धारती तहाँ।
तत्काल ही सर स्वच्छ हुआ कमल लहलहा।।हे.।।4।।

जब चीर द्रोपदी का दुःशासन ने था गहा।
सब ही सभा के लोग थे कहते हहा हहा।।
उस वक्त भीर पीर में तुमने करी सहा।
परदा ढका सती का सुजस जगत में रहा। ।हे.। ।5।।

श्रीपाल को सागर विषैं जब सेठ गिराया।
उनकी रमा से रमने को आया वो बेहया।।
उस वक्त के संकट में सती तुमको जो ध्याया।
दुःख दंद-फंद मैंट के आनंद बढ़ाया। ।हे.। ।6।।

हरिषेण की माता को जहाँ सौत सताया।
रथ जैन का तेरा चलै पीछे यों बताया।।
उस वक्त के अनशन में सती तुमको जो ध्याया।
चक्रेश हो सुत उसके ने रथ जैन चलाया। ।हे। ।7।।

सम्यक्त्व शुद्ध शीलवती चंदना सती।
जिसके नगीच लगती थी जाहिर रतीरती।।
बेड़ी में पड़ी थी तुम्हें जब ध्यावती हती।
तब वीर धीर ने हरी दुखदंद की गती। ।हे.। ।8।।

जब अंजना सती को हुआ गर्भ उजारा।
तब सास ने कलंक लगा घर से निकारा।।
वनवर्ग के उपसर्ग में तब तुमको चितारा।
प्रभु भक्त व्यक्त जानि के भय देव निवारा। ।हे.। ।9।।

सोमा से कहा जो तू सती शील विशाला।
तो कुम्भ तैं निकाल भला नाग जु काला।।
उस वक्त तुम्हें ध्याय के सति हाथ जब डाला।
तत्काल ही वह नाग हुआ फूल की माला। ।हे.। ।10।।

जब कुष्ठ रोग था हुआ श्रीपालराज को।
मैना सती की, आपकी पूजा, इलाज को।।
तत्काल ही सुन्दर किया श्रीपालराज को।
वह राजरोग भाग गया मुक्त राज को। हे.।।11।।

जब सेठ सुदर्शन को मृषादोष लगाया।
रानी के कहे भूप ने सूली पे चढ़ाया।।
उस वक्त तुम्हें सेठ ने निज ध्यान में ध्याया।
सूली से उतार उसको सिंहासन पै बिठाया। हे.।।12।।

जब सेठ सुधन्नाजी को वापी में गिराया।
ऊपर से दुष्ट फिर उसे वह मारने आया।।
उस वक्त तुम्हें सेठ ने दिल अपने में ध्याया।
तत्काल ही जंजाल से तब उसको बचाया। हे.।।13।।

इक सेठ के घर में किया दारिद्र ने डेरा।
भोजन का ठिकाना भी न था सांझ सबेरा।।
उस वक्त तुम्हें सेठ ने जब ध्यान में घेरा।
घर उसकेमेंतब कर दिया लक्ष्मी का बसेरा। हे.।।14।।

बलि वाद में मुनिराज सों जब पार न पाया।
तब रात को तलवार ले शठ मारने आया।।
मुनिराज ने निजध्यान में मन लीन लगाया।
उस वक्त हो प्रत्यक्ष तहाँ देव बचाया। हे.।।15।।

जब राम ने हनुमंत को गढ़लंक पठाया।
सीता की खबर लेने को सह सैन्य सिधाया।।
मग बीच दो मुनिराज की लख आग में काया।
झट वारि मूसलधार से उपसर्ग मिटाया। हे.।।16।।

जिननाथ ही को माथ नवाता था उदारा।
घेरे में पड़ा था वह वज्र कर्ण विचारा।।
उस वक्त तुम्हें प्रेम से संकट में चितारा।
रघुवीर ने सब दुख तहँ तुरन्त निवारा। है.।।17।।

रणपाल कुँवर के पड़ी थी पाँव में बेरी।
उस वक्त तुम्हें ध्यान में ध्याया था सबेरी।।
तत्काल ही सुकुमाल की सब झड़ पड़ी बेरी।
तुम राजकुंवर की सभी दुखदंद निवेरी। है.।।18।।

जब सेठ के नंदन को डसा नाग जु कारा।
उस वक्त तुम्हें पीर में धर धीर पुकारा।।
तत्काल ही उस बाल का विष भूरि उतारा।
वह जाग उठा सोके मानो सेज सकारा। है.।।19।।

मुनि मानतुंग को दई जब भूप ने पीरा।
ताले में किया बंद भरी लोह जंजीरा।।
मुनि ईश ने आदीश की थुति की है गंभीरा।
चक्रेश्वरी तब आनि के झट दूर की पीरा। है.।।20।।

शिवकोटि ने हठ था किया समंतभद्रसों।
शिव पिंड की वंदन करो शंको अभद्र सों।।
उस वक्त स्वयंभू रचा गुरु भावभद्र सों।
जिन चंद्र की प्रतिमा तहाँ प्रगटी सुभद्र सों। है.।।21।।

तोते ने तुम्हें आनि के फल आम चढ़ाया।
मेंढ़क ले चला फूल भरा भक्ति का भाया।।
तुम दोनों को अभिराम स्वर्गधाम बसाया।
हम आपसे दातार को लख आज ही पाया। है.।।22।।

कपि श्वान सिंह नेवला अज बैल विचारे।
तिर्यंच जिन्हें रंच न था बोध, चितारे।।
इत्यादि को सुर धाम दे शिवधाम में धारे।
हम आपसे दातार को प्रभु आज निहारे।।हे.।।23।।

तुम ही अनंत जंतु का भय भीर निवारा।
वेदोपुराण में गुरू गणधर ने उचारा।।
हम आपकी सरनागती में आके पुकारा।
तुम हो प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष इच्छिताकारा।।हे.।।24।।

प्रभु भक्त व्यक्त भक्त जक्त मुक्त के दानी।
आनंद कंद वृंद को हो मुक्ति के दानी।।
मोहि दीन जान दीनबंधु पातक भानी।
संसार विषम खार तार अंतर जामी।।हे.।।25।।

करुणानिधान वान को अब क्यों न निहारो
दानी अनंतदान के दाता हो संभारो।
वृषचंदनंद वृंद का उपसर्ग निवारो।
संसार विषम खार से प्रभु पार उतारो।।26।।

हे दीनबंधु श्रीपति करुणानिधान जी।
अब मेरी विथा क्यों ना हरो बार क्या लगी।।

✦ ✦ ✦

निर्वाणकाण्ड (भाषा)
(भैयालाल जी)

दोहा- वीतराग वंदों सदा, भाव सहित सिरनाय।
कहूँ काँड निर्वाण की, भाषा सुगम बनाय।।1।।

।।चौपाई।।

अष्टापद आदीश्वर स्वामी, वासुपूज्य चंपापुरि नामि।
नेमिनाथ स्वामी गिरनार, वन्दो भाव-भगति उरधार।।2।।
चरम तीर्थंकर चरम-शरीर, पावापुर स्वामी महावीर।
शिखरसम्मेद जिनेश्वर बीस, भावसहित वन्दो निश-दीश।।3।।
वरदत्तराय रु इन्द्र मुनिन्द्र, सायरदत्त आदि गुणवृन्द।
नगर तारवर मुनि ऊठ कोड़ि, वंदो भावसहित कर जोड़ि।।4।।
श्री गिरनार शिखर विख्यात, कोड़ि बहत्तर अरु सौ सात।
शंबु-प्रद्युम्न कुमार द्वै भाय, अनिरुद्ध आदि नमूं तसु पाय।।5।।
रामचन्द्र के सुत द्वै वीर, लाड-नरिंद आदि गुणधीर।
पाँच कोड़ि मुनि मुक्ति मंझार, पावागिरि वंदो निरधार।।6।।
पांडव तीन द्रविड-राजान, आठ कोड़ि मुनि मुकति पयान।
श्री शत्रुजंय-गिरि के शीश, भावसहित वंदो निश-दीस।।7।।
जे बलभद्र मुकति में गये, आठ कोड़ि मुनि औरहु भये।
श्रीगजपंथ शिखर सुविशाल, तिनके चरण नमूँ तिहूँ काल।।8।।
राम हनू सुग्रीव सुडील, गवय गवाख्य नील महानील।
कोड़ि निन्यानवै मुक्ति पयान, तुगीगिरि वंदो धरि ध्यान।।9।।
नंग अनंग कुमार सुजान, पाँच कोड़ि अरु अर्ध प्रमान।
मुक्ति गये सोनागिरि-शीश, ते वंदो त्रिभुवनपति ईश।।10।।
रावण के सुत आदिकुमार, मुक्ति गये रेवा-तट सार।
कोटि पंच अरु लाख पचास, ते वंदो धरि परम हुलास।।11।।

रेवानदी सिद्धवर कूट, पश्चिम दिशा देह जहँ छूट।
द्वै चक्री दश कामकुमार, ऊठकोड़ि वन्दो भव पार।।12।।
बड़वानी बड़नयर सुचंग, दक्षिण दिशि गिरि चूल उतंग।
इन्द्रजीत अरु कुंभ जु कर्ण, ते वन्दो भव-सागर तर्ण।।13।।
सुवरण-भद्र आदि मुनि चार, पावागिरि-वर-शिखर मंझार।
चेलना-नदी-तीर के पास, मुक्ति गये वन्दो नित तास।।14।।
फलहोड़ी बड़गाम अनूप, पच्छिम दिशा द्रोणगिरि रूप।
गुरुदत्तादि-मुनिश्वर जहाँ, मुक्ति गये वन्दो नित तहाँ।।15।।
बाल महाबाल मुनि दोय, नागकुमार मिले त्रय होय।
श्री अष्टापद मुक्ति मंझार, ते वंदो नित सुरत संभार।।16।।
अचलापुर की दिश ईशान, जहाँ मेंढगिरि नाम प्रधान।
साढ़े तीन कोड़ि मुनिराय, तिनके चरण नमूं चित लाय।।17।।
बंसस्थल वन के ढिंग होय, पच्छिम दिशा कुंथुगिरि सोय।
कुलभूषण देशभूषण नाम तिनके, चरणनि करूँ प्रणाम।।18।।
जसरथ राजा के सुत कहे, देश कलिंग पाँच सौ लहे।
कोटिशिला मुनि कोटि प्रमान, वंदन करूँ जोड़ जुग पान।।19।।
समवसरण श्रीपार्श्व-जिनन्द, रेसिंदीगिरि नयनानन्द।
वरदत्तादि पंच ऋषिराज, ते वन्दो नित धरम-जिहाज।।20।।
मथुरापुर पवित्र उद्यान जम्बू स्वामीजी निर्वाण
चरम केवली पंचम काल ते वंदो नित दीन दयाल।।21।।
तीन लोक के तीरथ जहाँ, नित प्रति वंदन कीजै तहाँ।
मन-वच-काय सहित सिरनाय, वंदन करहिं भविक गुणगाय।।22।।
संवत सतरहसौ इकताल, आश्विन सुदि दशमी सुविशाल।
भैया बंदन करहिं त्रिकाल, जय निर्वाणकांड गुणमाल।।23।।

✦ ✦ ✦

भक्तामर स्तोत्र (हिन्दी)
(कमलकुमार शास्त्री 'कुमुद')

भक्त अमर नत मुकुट सुमणियों की सु-प्रभा का जो भासक।
पापरुप अतिसघन तिमिर का, ज्ञान-दिवाकर-सा नाशक।।
भव जल पतित जनों को जिसने, दिया आदि में अवलम्बन।।
उनके चरण-कमल को करते, सम्यक बारम्बार नमन।।1।।
सकल वाङ्मय तत्वबोध से, उद्भव पटुतर धी-धारी।
उसी इन्द्र की स्तुति से है, वन्दित जग-जन मन-हारी।।
अति आश्चर्य की स्तुति करता, उसी प्रथम जिनस्वामी की।
जगनामी सुखधामी तद्भव-शिवगामी अभिरामी की।।2।।
स्तुति को तैयार हुआ हूँ, मैं निर्बुद्धि छोड़ के लाज।
विज्ञजनों से अर्चित हे प्रभु, मंदबुद्धि की रखना लाज।।
जल में पड़े चन्द्र मंडल को, बालक बिना कौन मतिमान।
सहसा उसे पकड़ने वाली, प्रबलेच्छा करता गतिमान।।3।।
हे जिन! चन्द्रकांत से बढ़कर, तब गुण विपुल अमल अतिश्वेत।
कह न सके नर हे गुण-सागर, सुर-गुरु के सम बुद्धि समेत।।
मक्र-नक्र-चक्रादि जन्तु युत, प्रलय पवन से बढ़ा अपार।
कौन भुजाओं से समुद्र के, हो सकता है परले पार।।4।।
वह मैं हूँ कुछ शक्ति न रखकर, भक्ति प्रेरणा से लाचार।
करता हूँ स्तुति प्रभु तेरी, जिसे न पौर्वापर्य विचार।।
निजशिशु की रक्षार्थ आत्म बल, बिना विचारे क्या न मृगी।
जाती है मृगपति के आगे, प्रेम-रंग में हुई रंगी।।5।।

अल्पश्रुत हूँ श्रुतवानों से हास्य कराने का ही धाम।
करती है वाचाल मुझे प्रभु, भक्ति आपकी आठों याम।।
करती मधुर गान पिक मधु में, जगजन मनहर अति अभिराम।
उसमें हेतु सरस फल-फूलों के, युत हरे-भरे-तरु-आम।।6।।
जिनवर की स्तुति करने से, चिर संचित भविजन के पाप।
पल भर में भग जाते निश्चित, इधर-उधर अपने ही आप।।
सकल लोक में व्याप्त रात्रि का, भ्रमर सरीखा काला ध्वान्त।
प्रातः रवि की उग्रकिरण लख, हो जाता क्षण में प्राणान्त।।7।।
मैं मति हीन दीन प्रभु तेरी, शुरू करुँ स्तुति अघहान।
प्रभु-प्रभाव ही चित्त हरेगा, सन्तों का निश्चय से मान।।
जैसे कमल-पत्र पर जल-कण, मोती जैसे आभावान।
दिपते हैं फिर छिपते हैं, असली मोती में हैं भगवान।।8।।
दूर रहे स्तोत्र आपका, जो कि सर्वथा है निर्दोष।
पुण्य-कथा ही किन्तु आपकी, हर लेती है कल्मष कोश।।
प्रभा प्रफुल्लित करती रहती, सर के कमलों को भरपूर।
फेंका करता सूर्य किरण को, आप रहा करता है दूर।।9।।
त्रिभुवन तिलक जगतपति हे प्रभु! सद्गुरुओं के हैं गुरुवर्य्य।
सद्भक्तों को निजसम करते, इसमें नहीं अधिक आश्चर्य।।
स्वाश्रित जन को निजसम करते, धनी लोग धन धरनी से।
नहीं करें तो उन्हें लाभ क्या? उन धनिकों की करनी से।।10।।
हे अनिमेष विलोकनीय प्रभु, तुम्हें देखकर परम-पवित्र।
तोषित होते कभी नहीं हैं, नयन मानवों के अन्यत्र।।
चन्द्र-किरण सम उज्जवल निर्मल क्षीरोदधि का कर जलपान
कालोदधि का खारा पानी, पीना चाहे कौन पुमान।।11।।
जिन जितने जैसे अणुओं से निर्मापित प्रभु तेरी देह।

थे उतने वैसे अणु जग में, शांत-राग-मय निःसन्देह।।
हे त्रिभुवन के शिरोभाग के अद्वितीय आभूषण रुप।
इसीलिये तो आप सरीखा नहीं दूसरों का है रूप ।।12।।
कहाँ आपका मुख अतिसुन्दर, सुर नर उरग नेत्रहारी।
जिसने जीत लिये सब जग के, जितने थे उपमा धारी।।
कहाँ कलंकी बंक चन्द्रमा, रंक समान कीट सा दीन।
जो पलास-सा फीका पड़ता, दिन में हो करके छवि-छीन।।13।।
तव गुण पूर्ण शशांक कान्तिमय, कला-कलापों से बढ़के।
तीन लोक में व्याप रहे हैं, जो कि स्वच्छता में चढ़के।।
विचरें चाहे जहाँ कि उनको, जगन्नाथ का एकाधार।
कौन माई का जाया रखता, उन्हें रोकने का अधिकार।।14।।
मद की छकीं अमर ललनायें, प्रभु के मन में तनिक विकार।
कर न सकीं आश्चर्य कौन सा, रह जाती हैं मन को मार।।
गिर-गिर जाते प्रलय पवन से, तो फिर क्या वह मेरु-शिखर।
हिल सकता है रंच मात्र भी, पाकर झंझावात प्रखर।।15।।
धूम न बत्ती तेल बिना ही, प्रकट दिखाते तीनों लोक।
गिरि के शिखर उड़ाने वाली, बुझा न सकती मारुत झोंक।।
तिस पर सदा प्रकाशित रहते, गिनते नहीं कभी दिन-रात।
ऐसे अनुपम आप दीप हैं, स्व-पर-प्रकाशक जगविख्यात।।16।।
अस्त न होता कभी न जिसको, ग्रस पाता है राहु प्रबल।
एक साथ बतलाने वाला, तीन लोक का ज्ञान विमल।।
रुकता कभी प्रभाव न जिसका, बादल की आकर के ओट।
ऐसी गौरव गरिमा वाले, आप अपूर्व दिवाकर कोट।।17।।
मोह महातम दलने वाला, सदा उदित रहने वाला।
राहु न बादल से दबता पर, सदा स्वच्छ रहने वाला।।

विश्व प्रकाशक मुख सरोज तव, अधिक कांतिमय शांति स्वरुप।
हे अपूर्व जग का शशिमंडल, जगत शिरोमणि शिव का भूप।।18।।
नाथ आपका मुख जब करता, अन्धकार का सत्यानाश।
तब दिन में रवि और रात्रि में, चन्द्र बिम्ब का विफल प्रयास।।
धान्य खेत जब धरती तल के, पके हुये हों अति अभिराम।
शोर मचाते जल को लादे, हुये धनों से तब क्या काम।।19।।
जैसा शोभित होता प्रभु का, स्वपर प्रकाशक उत्तम ज्ञान।
हरि-हरादि देवों में वैसा, कभी नहीं हो सकता भान।।
अति ज्योतिर्मय महारतन का, जो महत्व देखा जाता।
क्या वह किरणा कुलित कांच में, अरे कभी लेखा जाता।।20।।
हरि-हरादि देवों का ही मैं, मानूं उत्तम अवलोकन।
क्योंकि इन्हें देखने भर से, तुझसे तोषित होता मन।।
है परन्तु क्या तुम्हें देखने, से हे स्वामिन्! मुझको लाभ।
जन्म-जन्म में लुभा न पाते, कोई यह मेरा अभिताभ।।21।।
सौ-सौ नारी सौ-सौ सुत को, जनती रहती सौ-सौ ठौर।
तुम से सुत को जनने वाली, जननी महती क्या हैं और।।
तारागण को सर्व दिशाएँ, धरे नहीं कोई खाली।
पूर्व दिशा ही पूर्ण प्रतापी, दिनपति को जनने वाली।।22।।
तुमको परम पुरुष मुनि मानें, विमल वर्ण रवि तमहारी।
तुम्हें प्राप्त कर मृत्युंजय के, बन जाते जन अधिकारी।।
तुम्हें छोड़कर अन्य न कोई, शिवपुर पथ बतलाता है।
किन्तु विपर्यय मार्ग बताकर, भव-भव में भटकाता है।।23।।
तुम्हें आद्य अक्षय अनन्त प्रभु, एकानेक तथा योगीश।
ब्रह्मा ईश्वर या जगदीश्वर, विदित योग मुनिनाथ मुनीश।।
विमल ज्ञानमय या मकरध्वज, जगन्नाथ जगपति जगदीश।

इत्यादिक नामों कर माने, सन्त निरन्तर विभो निधीश।।24।।
ज्ञान पूज्य है अमर आपका, इसीलिए कहलाते बुद्ध।
भुवनत्रय के सुख सम्बर्द्धक, अतः तुम्हीं शंकर हो शुद्ध।।
मोक्ष मार्ग के आद्य प्रवर्त्तक, अतः विधाता कहे गणेश।
तुम सम अवनी पर पुरुषोत्तम और कौन होगा अखिलेश।।25।।
तीन लोक के दुःखहरण करने, वाले हे तुम्हें नमन।।
भूमण्डल के निर्मल भूषण, आदि जिनेश्वर तुम्हें नमन।
हे त्रिभुवन के अखिलेश्वर हो, तुमको बारम्बार नमन।
भव सागर के शोषक पोषक, भव्य जनों के तुम्हें नमन।।26।।
गुण समूह एकत्रित होकर, तुझ में यदि पा चुके प्रवेश।
क्या आश्चर्य न मिल पाये हो, अन्य आश्रय उन्हें जिनेश।।
देव कहे जाने वालों से, आश्रित होकर गर्वित दोष।
तेरी ओर न झाँक सके वे, स्वप्न मात्र में है गुणकोष।।27।।
उन्नत तरु अशोक के आश्रित, निर्मल किरणोन्नत वाला।
रुप आपका दिखता सुन्दर, तमहर मनहर छवि वाला।।
वितरक किरण निकर तमहारक, दिनकर धनके अधिक समीप
नीलांचल पर्वत पर होकर, नीरांजन करता ले दीप।।28।।
मणि मुक्ता किरणों से चित्रित, अद्‌भुत शोभित सिंहासन।
कान्तिमान कंचन सा दिखता, जिस पर तव कमनीय वदन।।
उदयाचल के तुंग शिखर से, मानो सहस्त्र-रश्मि वाला।
किरण जाल फैलाकर निकला, हो करने को उजियाला।।29।।
ढुरते सुन्दर चँवर विमल अति, नवल कुन्द के पुष्प समान।
शोभा पाती देह आपकी, रौप्य धवल-सी आभावान।।
कनकाचल के तुंग श्रृंड्ग से, झर-झर झरता है निर्झर।
चन्द्र-प्रभा सम उछल रही हो, मानों उसके ही तट पर ।।30।।

चन्द्र-प्रभा सम झल्लरियों से, मणि-मुक्तामय अति कमनीय
दीप्तिमान शोभित होते हैं, सिर पर छत्रत्रय भवदीय।।
ऊपर रहकर सूर्य-रश्मि का, रोक रहे हैं प्रखर-प्रताप।
मानों वे घोषित करते हैं, त्रिभुवन के परमेश्वर आप।।31।।
ऊँचे स्वर से करने वाली, सर्व दिशाओं में गुंजन।
करने वाली तीन लोक के, जन-जन का शुभ-सम्मेलन।।
पीट रही है डंका- "हो सत् धर्म-राज की नित जय-जय"।
इस प्रकार बज रही गगन में, भेरी तव यश की अक्षय।।32।।
कल्पवृक्ष के कुसुम मनोहर, पारिजात एवं मंदार।
गन्धोदक की मन्द वृष्टि, करते हैं प्रमुदित देव उदार।।
तथा साथ ही नभ से बहती, धीमी-धीमी मन्द पवन।
पंक्ति बांधकर बिखर रहे हों, मानों तेरे दिव्य-वचन।।33।।
तीन लोक की सुन्दरता यदि, मूर्तिमान बनकर आवे।
तन-भा-मंडल की छवि लखकर, तव सन्मुख शरमा जावे।।
कोटिसूर्य के ही प्रताप सम, किन्तु नहीं कुछ भी आताप।
जिसके द्वारा चन्द्र सुशीतल, होता निष्प्रभ अपने आप।।34।।
मोक्ष स्वर्ग के मार्ग प्रदर्शक, प्रभुवर तेरे दिव्य वचन।
करा रहे हैं "सत्य धर्म" के, अमर-तत्त्व का दिग्दर्शन।।
सुनकर जग के जीव वस्तुतः, कर लेते अपना उद्धार।
इस प्रकार परिवर्तित होते, निज-निज भाषा के अनुसार।।35।।
जगमगात नख जिसमें शोभें, जैसे नभ में चन्द्रकिरण।
विकसित नूतन सरसीरुहसम, हे प्रभो तेरे विमल चरण।।
रखते जहाँ वहीं रचते हैं, स्वर्णकमल, सुरदिव्य ललाम।
अभिनंदन के योग्य चरण तव, भक्ति रहे उनमें अभिराम।।36।।
धर्म देशना के विधान में, था जिनवर का जो ऐश्वर्य।

वैसा क्या कुछ अन्य कुदेवों, में भी दिखता है सौन्दर्य।।
जो छवि घोर तिमिर के नाशक, रवि में है देखी जाती।
वैसी ही क्या अतुल कान्ति, नक्षत्रों में लेखी जाती।।37।।
लोल कपोलों से झरती है, जहाँ निरन्तर मद की धार।
होकर अति मदमत्त कि जिस पर, करते हैं भौरें गुंजार।।
क्रोधासक्त हुआ यों हाथी, उद्धत ऐरावत सा काल।
देख भक्त छुटकारा पाते, पाकर तव आश्रय तत्काल।।38।।
क्षत-विक्षत कर दिये गजों के, जिसने उन्नत गण्डस्थल।
कांतिमान गज मुक्ताओं से, पाट दिया हो अवनी-तल।।
जिन भक्तों को तेरे चरणों, के गिरि की हो उन्न्त ओट।
ऐसा सिंह छलाँगें भरकर, क्या उस पर कर सकता चोट?।।39।।
प्रलय काल की पवन उड़ाकर, जिसे बढ़ा देती सब ओर।
फिकें फुलिंगे ऊपर तिरछे, अंगारों का भी हो जोर।।
भुवनत्रय को निगला चाहे, आती हुई अग्नि भभकार।
प्रभु के नाम मन्त्र जल से वह, बुझ जाती है उसही बार।।40।।
कंठ कोकिला सा अति काला, क्रोधित हो फण किया विशाल
लाल-लाल लोचन करके यदि, झपटै नाग महा विकराल।।
नाम रुप तव अहि दमनी का, लिया जिन्होंने हो आश्रय।
पग रखकर निशंक नाग पर, गमन करें वे नर निर्भय।।41।।
जहाँ अश्व की और गजों की, चीत्कार सुन पड़ती घोर।
शूरवीर नृप की सेनाएँ, रव करती हों चारों ओर।।
वहाँ अकेला शक्तिहीन नर, जप कर सुन्दर तेरा नाम।
सूर्य तिमिर सम-शूर सेन्य का, कर देता है काम तमाम।।42।।
रण में भालों से वेधित गज, तन से बहता रक्त अपार।
वीर लड़ाकू जहँ आतुर हैं, रुधिर नदी करने को पार।।

भक्त तुम्हारा हो निराश तहँ, लख अरिसेना दुर्जय रुप।
तव पादारबिन्द पा आश्रय, जय पाता उपहार स्वरुप।।43।।
वह समुद्र की जिसमें होवें, मच्छ मगर एवं घड़ियाल।
तूफाँ लेकर उठती होवें, भयकारी लहरें उत्ताल।।
भ्रमर चक्र में फंसी हुई हो, बीचों बीच अगर जल यान।
छुटकारा पा जाते दुःख से, करने वाले तेरा ध्यान।।44।।
असहनीय उत्पन्न हुआ हो, विकट जलोदर पीड़ा भार।
जीने की आशा छोड़ी हो, देख दशा दयनीय अपार।।
ऐसे व्याकुल मानव पाकर, तेरी पद रज संजीवन।
स्वास्थ्य लाभ कर बनता उसका, कामदेव सा सुन्दर तन।।45।।
लोह श्रृंखला से जकड़ी है, शिख से नख तक देह समस्त।
घुटने जंघे छिले बेड़ियों, से अधीर जो है अतित्रस्त।।
भगवन ऐसे बन्दीजन भी, तेरे नाम मन्त्र की जाप।
जपकर गत बन्धन हो जाते, क्षणभर में अपने ही आप।।46।।
वृषभेश्वर के गुणस्तवन का, करते निशदिन जो चिन्तन।
भय भी भयाकुलित हो उनसे, भग जाता है हे स्वामिन्।।
कुँजर-समर-सिंह शोक-रुज, अहि दावानल कारागार।
इनके अतिभीषण दुखों का भी, हो जाता क्षण में संहार।।47।।
हे प्रभु तेरे गुणोद्यान की, क्यारी से चुन दिव्य ललाम।
गुंथी विविध वर्ण सुमनों की, गुणमाला सुन्दर अभिराम।।
श्रद्धासहित भविकजन जो भी, कण्ठाभरण बनाते हैं।
'मानतुंग' सम निश्चित सुन्दर, मोक्ष लक्ष्मी को पाते हैं।।48।।

✦ ✦ ✦

भगवान से रागी और विषयों से वीतरागी बनो।

बाहुबली स्तुति

रचयिता- प.पू. गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी

दीर्घ भाल तव भला रहा, भाग्यवान को बता रहा।
सोच रखो तुम नित ऊँची, ऊँचाई मिलेगी जो समुची।।1।।
दो नय सम तव लोचन हैं, मिथ्यातम के विमोचन हैं।
सम्यग्दर्शन हेतु बनें, सम्यग्पथ के सेतु बनें।।2।।
नयन मध्य तव घ्राण रही, घृणा तजो यह बता रही।
घृणा-घृणा की जननी है, घृणा-घृणा को जनती है।।3।।
दीर्घ श्रोतृ तव हैं प्यारे, श्रवण करो रव अघ हारे।
दुःश्रुति का तुम त्याग करो, मनः मलिनता हेतु तजो।।4।।
मुख मण्डल तव सुंदर है, सहज शांति का मंदिर है।
कहता मन नित प्रसन्न रखो, हर्षित हो प्रभु भक्ति करो।।5।।
युगल बाहुबल के धारी, भविजन के तुम हितकारी।
संयम बल वे देते हैं, हर संकट हर लेते हैं।।6।।
पाद युगल तव स्थिर जो, मोक्ष मार्ग पर स्थित वो।
भविजन के वे हिय बसते, हृदय भविक उसमें रमते।।7।।
पाद शरण आ लिपट चुकी, हस्तालम्बन पा उच्च हुई।
भक्ति से जो चरण नमे, मुक्तिपुरी के कांत बने।।8।।
बाहुबली तव चरणों में, विराग हृदय मम अर्पण है।
दर्शन पा मन मुदित हुआ, सिरसा करता नमन सदा।।9।।

दोहा

मनहर अघहर शांत छवि, गोमटेश भगवान।
श्रवणबेलगोला में तुम्हें, बारम्बार प्रणाम।।1।।
एक वर्ष से सहस्र तक, खड़े मिले हे नाथ।
बेलगोला गोमटेश के, चरणों में मम माथ।।2।।
नूर बड़ा बेनूर है, अतिशय क्षेत्र महान।
विनय सहित मम नमन है, बाहुबली भगवान।।3।।
भक्ति कारक लायक जो, कारकल की शान।
बाहुबली भगवान को, करूँ सहस्र प्रणाम।।4।
हर स्थल नहीं धर्म के, धर्म स्थल है थान।
बाहुबली भगवान को, करूँ विनम्र प्रणाम।।5।।
नाग खड़े आशीष पा, रत्नत्रय के फूल।
गोम्मटगिरि बाहुबली, तुम्हें नमन अनुकूल।।6।।
गोल-मटोल अरू श्याम वर्ण, लघु तन हैं प्रभु आप।
मेलचित्तामूर के बाहुबली, नमन हरे संताप।।7।।

बारह भावना

कविवर मंगतरायकृत

(दोहा)

वन्दू श्री अरहन्त पद, वीतराग विज्ञान।
वरणूं बारह भावना, जग जीवन हित जान।।1।।

(विष्णुपद छन्द)

कहाँ गये चक्री जिन जीता, भरत खण्ड सारा।
कहाँ गये वह राम रु लछमन, जिन रावण मारा।।
कहाँ कृष्ण रुक्मिणी सतभामा, अरु सम्पत्ति सगरी।
कहाँ गये वह रङ्ग महल अरु, सुवरन की नगरी।।2।।

नहीं रहे वह लोभी कौरव, जूझ मरे रन में।
गये राज तज पाँडव वन को, अग्नि लगी तन में।।
मोह नींद से उठ रे चेतन, तुझे जगावन को।
हो दयाल उपदेश करें, गुरु बारह भावन को।।3।।

अनित्य भावना

सूरज चाँद छिपै निकले, ऋतु फिर फिर कर आवे।
प्यारी आयु ऐसी बीते, पता नहीं पावे।।
पर्वत पतित नदी सरिता जल, बह कर नहिं हटता।
स्वाँस चलत यों घटै काठ ज्यों, आरे सों कटता।।4।।

ओस बून्द ज्यों गलै धूप में, वा अंजुलि पानी।
छिन-छिन यौवन छीन होत है, क्या समझे प्रानी।।
इन्द्रजाल आकाश नगर सम, जग सम्पत्ति सारी।
अथिर रूप संसार विचारों, सब नर अरु नारी।।5।।

अशरण भावना

काल सिंह ने मृग चेतन को घेरा भव वन में।
नहीं बचावन हारा कोई, यों समझो मन में।।
मन्त्र-यन्त्र सेना धन सम्पत्ति, राज पाट छूटे।
वश नहिं चलता काल लुटेरा, काय नगरि लूटे।।6।।
चक्र रतन हलधर सा भाई, काम नहीं आया।
एक तीर के लगत कृष्ण की, विनश गई काया।।
देव धर्म गुरु शरण जगत में और नहीं कोई।
भ्रम से फिरे भटकता चेतन, यूँ ही उमर खोई।।7।।

संसार भावाना

जनम-मरण अरु जरा रोग से, सदा दुःखी रहता।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव भव, परिवर्तन सहता।।
छेदन-भेदन नरक पशु गति, वध-बन्धन सहना।
राग उदय से दुःख सुरगति में, कहाँ सुखी रहना।।8।।
भोगी पुण्य फल हो इक इन्द्री, क्या इसमें लाली।
कुतवाली दिन चार वही फिर, खुरपा अरु जाली।।
मानुष जन्म अनेक विपत्तिमय, कहीं न सुख देखा।
पंचम गति सुख मिले, शुभाशुभ का मेटो लेखा।।9।।

एकत्व भावना

जन्मे मरे अकेला चेतन, सुख दुःख का भोगी।
और किसी का क्या इक दिन यह देह जुदी होगी।।
कमला चलत न पैंड जाय मरघट तक परिवारा।
अपने अपने सुख को रोवै, पिता पुत्र दारा।।10।।
ज्यों मेले में पन्थी जन मिल, नेह फिरे धरते।
ज्यों तरुवर पै रैन बसेरा, पन्छी आ करते।।

कोस कोई दो कोस कोई उड़, फिर थक-थक हारे।
जाय अकेला हंस सङ्ग में, कोई न पर मारे।।11।।

अन्यत्व भावना

मोह रूप मृग तृष्णा जग में, मिथ्या जल चमके।
मृग चेतन नित भ्रम में उठ-उठ, दौड़े थक-थक के।।
जल नहिं पावै प्राण गमावै, भटक-भटक मरता।
वस्तु पराई मानै अपनी, भेद नहीं करता।।12।।
तू चेतन अरु देह अचेतन, यह जड़ तू ज्ञानी।
मिले अनादि यतन तैं बिछुड़े, ज्यों पय अरु पानी।
रूप तुम्हारा सबसों न्यारा, भेद ज्ञान करना।
जो लों पौरुष थके न तो लों, उद्यम सो चरना।।13।।

अशुचि भावना

तू नित पोखै यह सूखे ज्यों, धोवे त्यों मैली।
निश दिन करै उपाय देह का, रोग दशा फैली।।
माता-पिता रज बीरज मिलकर, बनी देह तेरी।
मांस हाड़ नश लहू राध की, प्रगट व्याधि घेरी।।14।।
काना पौंडा पड़ा हाथ यह, चूँसे तो रोवै।
फलै अनन्त जु धर्म ध्यान की, भूमि विषै बोवे।।
केसर चन्दन पुष्प सुगन्धित, वस्तु देख सारी।
देह परसते होय, अपावन निश दिन मल जारी।।15।।

आस्रव भावना

ज्यों सर जल आवत मोरी त्यों, आस्रव कर्मन को।
दर्वित जीव प्रदेश गहै जब, पुद्‌गल भरमन को।।
भावित आस्रव भाव शुभाशुभ, निश दिन चेतन को।
पाप-पुण्य के दोनों करता, कारण बन्धन को।।16।।

पन मिथ्यात्व योग पन्द्रह द्वादश अविरत जानो।
पंच रु बीस कषाय मिले सब, सत्तावन मानो।।
मोह भाव की ममता टारै, पर परिणति खोते।
करे मोख का यतन निरास्रव ज्ञानी जन होते।।17।।

संवर भावना

ज्यों मोरी में डाट लगावे, तब जल रूक जाता।
त्यों आस्रव को रोकै संवर क्यों नहिं मन लाता।।
पंच महाव्रत समिति गुप्तिकर, वचन काय मन को।।
दश विध धर्म परीषह बाईस, बारह भावन को।।18।।
यह सब भाव सतावन मिलकर, आस्रव को खोते।
सुपन दशा से जागो चेतन, कहाँ पड़े सोते।।
भाव शुभाशुभ रहित शुद्ध, भावन संवर भावै।
डाँट लगत यह नाव पड़ी, मंझधार पार जावै।।19।।

निर्जरा भावना

ज्यों सरवर जल रुका सूखता, तपन पड़े भारी।
संवर रोके कर्म निर्जरा, है सोखन हारी।
उदय भोग सविपाक समय, पक जाय आम डाली।।
दूजी है अविपाक पकावें, पाल विषै माली।।20।।
पहली सबके होय नहीं कुछ, सरे काम तेरा।
दूजी करे जु उद्यम करके, मिटे जगत फेरा।।
संवर सहित करो तप प्रानी, मिले मुक्ति रानी।
इस दुलहिन की यही सहेली, जानें सब ज्ञानी।।21।।

लोक भावना

लोक अलोक आकाश माँहि थिर, निराधार जानो।
पुरुष रूप कर कटी भये षट्, द्रव्यन सों मानो।।

इसका कोई न करता हरता, अमिट अनादी है।
जीव रु पुद्गल नाचे यामैं, कर्म उपाधी है।।22।।
पाप पुण्य सों जीव जगत में, नित सुख-दुःख भरता।
अपनी करनी आप भरै सिर औरन के धरता।।
मोह कर्म को नाश मेटकर, सब जग की आसा।
निज पद में थिर होय लोक के, शीश करो वासा।।23।।

बोधिदुर्लभ भावना

दुर्लभ है निगोद से थावर, अरु त्रस गति पानी।
नर काया को सुरपति तरसे, सो दुर्लभ प्राणी।।
उत्तम देश सुसंगति दुर्लभ, श्रावक कुल पाना।
दुर्लभ सम्यक् दुर्लभ संयम, पंचम गुण ठाना।।24।।
दुर्लभ रत्नत्रय आराधन, दीक्षा का धरना।
दुर्लभ मुनिवर के व्रत पालन, शुद्ध भाव करना।।
दुर्लभ से दुर्लभ है चेतन, बोधि ज्ञान पावै।
पाकर केवलज्ञान नहीं फिर, इस भव में आवै।।25।।

धर्म भावना

एकान्तवाद के धारी जग में, दर्शन बहुतेरे।
कल्पित नाना युक्ति बनाकर, ज्ञान हरें मेरे।।
हो सुछन्द सब पाप करें सिर, करता के लावे।
कोई छिनक कोई करता से, जग में भटकावे।।26।।
वीतराग सर्वज्ञ दोष बिन, श्री जिनकी वानी।
सप्त तत्व का वर्णन जामें, सब को सुख दानी।।
इनका चिंतवन बार-बार कर, श्रद्धा उर धरना।
'मंगत' इसी जतन तें इक दिन, भवसागर तरना।।27।।

✦ ✦ ✦

विरक्ति भावना

परम पूज्य गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज

अनित्य भावना

अनित्य योग संयोग अहा क्या, कितना सुख दे सकते हैं।
मित्र-स्वजन अरू परिजन जन भी, साथ कहाँ दे सकते हैं।।
अक्ष विषय सब संग संग्रह, पूजा यश सब क्षणिक रहा।
अनित्य योग से विरहित हूँ, अब नित्य योग में रहूँ सदा।।1।।

अशरण भावना

अशरण जग में शरण न कोई, शरणार्थी तू खोज जरा।
पुण्योदय तक साथ सभी हैं, क्षीण पुण्य पर दूर सदा।।
जिस-जिस की तू शरण खोजता, उनको भी जब शरण नहीं।
पंच गुरु अरू स्वयं आपकी शरण शास्त्र में उभय कहीं।।2।।

संसार भावना

संसार रहा असार पूर्ण ही, नहीं सार इनमें कुछ भी।
हर भव में सब छान लिया है, नहीं मिला है सार कहीं।।
दुखी सभी जन यहाँ दिखे हैं, स्वार्थ भाव से ग्रसे सभी।
अतः त्यागकर शिवपथ पर मैं, पग-पग पथ पर बढ़ू अभी।।3।।

एकत्व भावना

एकत्व रूप से जन्म लिया था, मरण स्वयं का हुआ सदा।
कर्म पूर्व में किये स्वयं थे, भोगा उनको स्वयं अहा।।
नहीं बाँट सका हे कोई, सुख-दुख से सब किंचित भी।
अतः धर्ममय पथ पर चलकर बनूँ स्वयं एकत्वमयी।।4।।

अन्यत्व भावना

अन्यत्व रूप गृह बांधव जन हैं, वैभव सम्भव जितना है।
गुरुजन, परिजन, स्वजन देह भी वस्त्राभूषण भिन्न रहे।।
कर्म स्वभाव से भिन्न सदा है, यश पूजा सब भिन्न रही।
स्वयं स्वभाव से विरहित हैं सब, अन्यत्व मयी हैं भिन्न सभी।।5।।

अशुचि भावना

अशुचि पदार्थ हैं जग में जितने, जिनसे तेरी देह बनी।
अन्य अर्थ से घृणा रही पर, अशुचि देह से घृणा न की।।
जिसमें तू चिरकाल रहा है, हटने की जिससे मति न हुई।
अतः देह को ऐसा त्यागो, जो प्राप्त न फिर हो सके कभी।।6।।

आस्रव भावना

आस्रव होता जिस कारण से, उनको देखो चेतन तुम।
कितना होता अहित सदा है, जिनसे पतित हुये हो तुम।।
शुभ आस्रव भी आश्रवमय है, अशुभ-अशुभतर जान सदा।
कर्मास्रव के उन भावों से, तू दूर अहा हो दूर सदा।।7।।

संवर भावना

संवर होता रत्नत्रय से, पालन करने जुट जाओ।
श्रेष्ठ हृदय से यथाशक्ति से, निर्दोष साधना में आओ।।
संवर की दृढ़ दीवालों में, कभी आस्रव को स्थान नहीं।
आस्रव के रूक जाने से फिर, निश्चित शिव की प्राप्ति रही।।8।।

निर्जरा भावना

निर्जर जर-जर जला डालती, कर्म रूप सब ईंधन को।
घिस-घिस घिसने से आरी भी, काट डालती चन्दन को।।
सम्यक् युक्ति युक्त तपों से, अविपाक निर्जरा होती है।
संक्लेश मुक्त सद्धर्म युक्त वह, कलिल कालिमा धोती है।।9।।

विरक्ति भावना

लोक भावना

लोक ऊर्ध्व और मध्य अधा के, भेदों से त्रय भेदमयी।
रत्नत्रय के धर्म बिना ही, जीव जगत भवभ्रमत सभी।।
भ्रमण-भ्रमण नित करने से ही, भ्रमित हुई सभी मती।
अतः धर्म को पाकर चेतन, काटो अब तो कर्म सभी।।10।।

बोधि दुर्लभ भावना

बोधि दुर्लभ कहते चेतन, रत्नत्रय मय भावों को।
एक-एक जब दुर्लभ है फिर, तीन रत्न की बात कहो।।
अर्जन जिसका महाकठिन है, रक्षण की फिर कथा कहाँ।
अतः पतन के हेतु अनेकों, उनसे रह तू सजग सदा।।11।।

धर्म भावना

धर्म स्वभावमय होता चेतन, जिससे तू नित दूर रहा।
संसार सिन्धु से पतित जनों को, पावन सुख में रखे सदा।।
धर्म साधना स्वयं समाहित, सत्य हृदय के भावों से।
जिससे लसती द्रव्य साधना 'विराग' शीघ्र ही धारो ये।।12।।

दोहा

विरक्ति भावना हे प्रभु, भायी विरक्ति काज।
वीतरागता प्राप्त हो, मिटे जगत संताप।।13।।
साध्य स्मरण नित ही रहे, यही भावना हेतु।
यथा शक्ति बढ़ता रहूँ, पाऊँ भव का सेतु।।14।।
साध्य सिद्धि जब तक नहीं, रहे भावना सार।
शिव पथ पर मम गमन हो, खुले मोक्ष का द्वार।।15।।

✦ ✦ ✦

बारह भावना

भूधरदासजी कृत

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन अपनी-अपनी बार।।1।।
दल बल देवी देवता, मात-पिता परिवार।
मरती बिरिया जीव को, कोई न राखनहार।।2।।
दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णावश धनवान।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान।।3।।
आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।
यों कबहूँ या जीव को, साथी सगा न कोय।।4।।
जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय।
घर संपत्ति पर प्रगट ये, पर है परिजन लोय।।5।।
दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह।।6।।
मोह नींद के जोर, जगवासी घूमै सदा।
कर्म चोर चहूँ ओर, सरवस लूटें सुध नहीं।।7।।
सतगुरु देय जगाय, मोहनींद जब उपशमें।
तब कुछ बनहिं उपाय, कर्म चोर आवत रुकैं।।8।।
ज्ञानदीप तप तेलभर, घर शौधें भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसै नहीं, बैठे पूरब चोर।।9।।
पंच महाव्रत संचरन, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार।।10।।

चौदह राजू उतंग नभ, लोक पुरुष संठान।
तामें जीव अनादि तें, भरमत हैं बिन ज्ञान।।11।।
धन कन कंचन राजसुख, सबहि सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसार में एक यथारथ ज्ञान।।12।।
जांचे सुरतरु देय सुख, चिंतत चिंता रैन।
बिन जांचे बिन चिंतये धर्म सकल सुखदैन।।13।।

✦ ✦ ✦

स्तवन

भव वन में जी भर घूम चुका, कण-कण को जी भर-भर देखा।
मृग-सम मृग-तृष्णा के पीछे, मुझको न मिली सुख की रेखा।।1।।
झूठे जग के सपने सारे, झूठी मन की सब आशायें।
तन-जीवन-यौवन अस्थिर है, क्षण-भंगुर पल में मुरझाएँ।।2।।
सम्राट महाबल सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या?
अशरण मृत काया में हर्षित, निज जीवन डाल सकेगा क्या।।3।।
संसार महा दुख सागर के, प्रभु दुखमय सुख आभासों में।
मुझको न मिला सुख क्षण भर भी, कंचन-कामिनि-प्रासादों में।।4।।
मैं एकाकी एकत्व लिये, एकत्व लिये सब ही आते।
तन धन को साथी समझा था, पर ये भी छोड़ चले जाते।।5।।
मेरे न हुए ये मैं इन से, अति भिन्न अखंड निराला हूँ।
निज में पर से अन्यत्व लिये, निज सम रस पीने वाला हूँ।।6।।
जिसके श्रृंगारों में मेरा, यह महँगा जीवन घुल जाता।
अत्यन्त अशुचि जड़ काया से, इस चेतन का कैसा नाता।।7।।
दिन रात शुभाशुभ भावों से, मेरा व्यापार चला करता।
मानस वाणी और काया से, आस्रव का द्वार खुला रहता।।8।।
शुभ और अशुभ की ज्वाला से, झुलसा है मेरा अन्तस्तल।
शीतल समकित किरणें फूटें, संवर से जागे अन्तर्बल।।9।।
फिर तप की शोधन वह्नि जगे, कर्मों की कड़ियाँ टूट पड़ें।
सर्वाङ्ग निजात्म प्रदेशों से, अमृत के निर्झर फूट पड़ें।।10।।
हम छोड़ चले यह लोक तभी, लोकान्त विराजें क्षण में जा।
निज लोक हमारा वासा हो, शोकांत बने फिर हमको क्या।।11।।
जागे मम दुर्लभ बोधि प्रभो! दुर्नयतम सत्वर टल जावे।
बस ज्ञाता दृष्टा रह जाऊँ मद-मत्सर-मोह विनश जावे।।12।।

चिर रक्षक धर्म हमारा हो, हो धर्म हमारा चिर साथी।
जग में न हमारा कोई था, हम भी न रहें जग के साथी।।13।।
चरणों में आया हूँ प्रभुवर! शीतलता मुझ को मिल जावे।
मुरझाई ज्ञान-लता मेरी, निज अन्तर्बल से खिल जावे।।14।।
सोचा करता हूँ भोगों से, बुझ जावेगी इच्छा ज्वाला।
परिणाम निकलता है लेकिन, मानो पावक में घी डाला।।15।।
तेरे चरणों की पूजा से, इन्द्रिय सुख की ही अभिलाषा।
अब तक न समझ ही पाया प्रभु! सच्चे सुख की भी परिभाषा।।16।।
तुम तो अविकारी हो प्रभुवर! जग में रहते जग से न्यारे।
अतएव झुके तब चरणों में, जग के माणिक मोती सारे।।17।।
स्याद्वाद मयी तेरी वाणी शुभनय के झरने झरते हैं।
उस पावन नौका पर लाखों, प्राणी भव-वारिधि तिरते हैं।।18।।
हे गुरुवर! शाश्वत सुख दर्शक, यह नग्न स्वरूप तुम्हारा है।
जग की नश्वरता का सच्चा, दिग्दर्शन करने वाला है।।19।।
जब जग विषयों में रच-पच कर, गाफिल निद्रा में सोता हो।
अथवा वह शिव के निष्कंटक, पथ में विषकटंक बोता हो।।20।।
हो अर्द्ध निशा का सन्नाटा, वन में वनचारी चरते हों।
तब शान्त निराकुल मानस तुम, तत्वों का चिंतन करते हो।।21।।
करते तप शैल-नदी-तट पर, तरु-तल वर्षा की झड़ियों में।
समता-रस-पान-किया करते, सुख-दुख दोनों की घड़ियों में।।22।।
अन्तर-ज्वाला हरती वाणी, मानों झड़ती हों फुलझड़ियाँ।
भव-बन्धन तड़-तड़ टूट पड़ें, खिल जावें अन्तर की कलियाँ।।23।।
तुम-सा दानी क्या कोई हो, जग को दे दी जग की निधियाँ।
दिन-रात लुटाया करते हो, सम-शम की अविनश्वर मणियाँ।।24।।

हे निर्मल देव! तुम्हें प्रणाम, हे ज्ञान-दीप-आगम! प्रणाम!
हे शान्ति-त्याग के मूर्तिमान, शिव-पथ-पंथी गुरुवर! प्रणाम!।

वैराग्य भावना

बीज राख फल भोगवे, ज्यों किसान जगमाहिं।
त्यों चक्री नृप सुख करैं, धर्म विसारें नाहिं।।1।।

।। जोगीरासा वा नरेन्द्र छन्द ।।

इहविधराज करै नरनायक, भोगे पुण्य विशालो।
सुखसागर में रमत निरन्तर, जात न जान्यो कालो।।
एक दिवस शुभ कर्म-संजोगे क्षेमंकर मुनि वंदे।
देखि सिरीगुरु के पद-पंकज, लोचन अलि आनंदे।।2।।
तीन प्रदक्षिण दे शिर नायो, कर पूजा थुति कीनी।
साधुसमीप विनय कर बैठयो, चरनन में दिष्टि दीनी।।
गुरु उपदेश्यो धर्मशिरोमणि, सुन राजा वैरागे।
राजरमा वनितादिक जे रस, ते रस बेरस लागे।।3।।
मुनि सूरज कथनी किरणावलि, लगत भरम बुधि भागी।
भव तनभोग स्वरुप विचारयो, परम धरम अनुरागी।।
इह संसार महावन भीतर, भ्रमते ओर न आवै।
जामन-मरण जरा दव दाहै, जीव महादुख पावै।।4।।
कबहूँ जाय नरक थिति भुंजै, छेदन-भेदन भारी।
कबहूं पशु परजाय धरै तहँ, बध बंधन भयकारी।।
सुरगति मैं पर-संपति देखे, राग उदय दुख होई।
मानुष योनि अनेक विपतिमय, सर्व सुखी नहिं कोई।।5।।
कोई इष्ट वियोगी विलखै, कोई अनिष्ट संयोगी।
कोई दीन दरिद्री विलखे, कोई तन के रोगी।।
किसही घर कलिहारी नारी, कै बैरी सम भाई।

किसही के दुख बाहिर दीखै, किस ही उर दुचि-ताई।।6।।
कोई पुत्र विना नित झूरै, होय मरै तब रोवै।
खोटी संतति सो दुख उपजै, क्यों प्रानी सुख सोवै।।
पुण्य उदय जिनके तिनके भी, नाहिं सदा सुख साता।
यह जगवास जथारथ-देखे, सब दीखै दुःखदाता।।7।।
जो संसारविषै सुख होता, तीर्थंकर क्यों त्यागै।
काहे को शिवसाधन करते, संजमसों अनुरागै।।
देह अपावन अथिर घिनावन, यामैं सार न कोई।
सागर के जलसों शुचि कीजैं, तो भी शुद्ध न होई।।8।।
सात कुधातु-भरी मलमूरत, चाम लपेटी सोहै।
अंतर देखत या सम जग में, अवर अपावन कोहै।।
नवमलद्वार स्रवैं निशिवासर, नाम लिये घिन आवै।
व्याधि-उपाधि अनेक जहां तहँ, कौन सुधी सुख पावै।।9।।
पोषत तो दुख दोष करै अति, सोषत सुख उपजावै।
दुर्जन-देहस्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावै।।
राचनजोग स्वरूप न याको विरचन जोग सही है।
यह तन पाय महातप कीजै यामें सार यही है।।10।।
भोग बुरे भवरोग बढ़ावैं, बैरी है जग जीके।
बेरस होंय विपाक समय अति, सेवत लागैं नीके।।
वज्रअगिनि विष से विषधर से, ये अधिके दुखदाई।
धर्म रतन के चोर चपल अति, दुर्गतिपंथ सहाई।।11।।
मोह उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानै।
ज्यों कोई जन खाय धतूरा, सो सब कंचन मानै।।

ज्यों-ज्यों भोग संजोग मनोहर, मनवांछित जन पावैं।
तृष्णा नागिन त्यों-त्यों डंकै, लहर जहर की आवे।।12।।
मैं चक्रीपद पाय निरन्तर, भोगे भोग घनेरे।
तो भी तनक भये नहिं पूरन, भोग मनो-रथ मेरे।।
राजसमाज महा अघकारण, बैर-बढ़ावन हारा।
वेश्यासम लक्ष्मी अति चंचल याका कौन पत्यारा।।13।।
मोह-महारिपु बैर विचार्यो, जगजिय संकट डारे।
घर कारागृह वनिता बेडी, परिजन जन रखवारे।।
सम्यक्दर्शन ज्ञानचरण तप, ये जियके हितकारी।
ये ही सार असार और सब, यह चक्री चित धारी।।14।।
छोड़े चौदह रत्न नवोनिधि, अरु छोड़े संग साथी।
कोडि अठारह घोड़े छोड़े चौरासी लख हाथी।।
इत्यादिक संपति बहुतेरी जीरण-तृणसम त्यागी।
नीति विचार नियोगी सुतकों, राज्य दियो बड़भागी।।15।।
होय निशल्य अनेक नृपति संग, भूषण वसन उतारे।
श्रीगुरु चरणधारी जिनमुद्रा, पंचमहाव्रत धारे।।
धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरज धारी।
ऐसी सम्पत्ति छोड़ बसे बन तिनपद धोक हमारी।।16।।
दोहा-परिग्रह पोट उतार सब, लीनों चारित पंथ।
निज स्वभाव में थिर भए, वज्रनाभि निर्ग्रंथ।।17।।

+ + +

सज्जन कभी उपकार भूलते नहीं
और दुर्जन कभी उपकार मानते नहीं।

मेरी भावना
(कवि जुगल किशोर 'मुख्तार')

जिसने रागद्वेष कामादिक जीते, सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया।।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति-भाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसी में लीन रहो।।1।।
विषयों की आशा नहिं जिनके, साम्य-भाव धन रखते हैं।
निज पर के हित साधन में जो, निश दिन तत्पर रहते हैं।।
स्वार्थ-त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुःख समूह को हरते हैं।।2।।
रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उन ही जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे।।
नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूठ कभी नहिं कहा करूँ।।
परधन वनिता पर न लुभाऊँ, सन्तोषामृत पिया करूँ।।3।।
अहंकार का भाव न रक्खूँ, नहीं किसी पर क्रोध करूँ।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या-भाव धरूँ।।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल-सत्य व्यवहार करूँ।।
बने जहाँ तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूँ।।4।।
मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे।
दीन-दुखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा-स्त्रोत बहे।।
दुर्जन क्रूर-कुमार्ग-रतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्य-भाव रक्खूँ मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे।।5।।
गुणीजनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड़ आवे।

बने जहाँ तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे।।
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे।।6।।
कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षों तक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आ जावे।।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे
तो भी न्याय मार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पावे।।7।।
होकर सुख में मग्न न फूले, दुःख में कभी न घबरावे।
पर्वत नदी-श्मशान-भयानक, अटवी से नहिं भय खावे।।
रहे अडोल-अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे।
इष्ट वियोग अनिष्ट योग में, सहनशीलता दिखलावे।।8।।
सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे।
बैर पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावें।।
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावे।
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना, मनुज-जन्म फल सब पावें।।9।।
ईति-भीति व्यापै नहिं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे।
धर्म-निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे।।
रोग-मरी-दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे।
परम अहिंसा-धर्म जगत में, फैल सर्व हित किया करे।।10।।
फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर पर रहा करे।
अप्रिय कटुक-कठोर शब्द नहीं, कोई मुख से कहा करे।।
बनकर सब "युग-वीर" हृदय से, देशोन्नति-रत रहा करें।
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से, सब दुःख-संकट सहा करें।।11।।

✦ ✦ ✦

दुःख हरण विनती

(पं. वृन्दावन जी)

श्री पति जिनवर करुणायतनं, दुखहरन तुमारा बाना है।
मत मेरी बार अबार करो, मोहिं देहु विमल कल्याना है। ।टेक।।
त्रैकालिक वस्तु प्रत्यक्ष लखो, तुम सों कछु बात न छाना है।
मेरे उर आरत जो वरतैं, निहचै सब सो तुम जाना है।।
अवलोक विथा मत मौन गहो, नहिं मेरा कहीं ठिकाना है।
हो राजिवलोचन सोच विमोचन, मैं तुमसों हित ठाना है। ।1।।
सब ग्रंथनि में निरग्रंथनि ने, निरधार यही गणधार कही।
जिननायक ही सब लायक हैं, सुखदायक छायक ज्ञानमही।।
यह बात हमारे कान परी, तब आन तुमारी सरन गही।
क्यों मेरी बार बिलंब करो, जिननाथ कहो वह बात सही। ।2।।
काहू को भोग मनोग करो, काहू को स्वर्ग विमाना है।
काहू को नाग नरेशपती, काहू को ऋद्धि निधाना है।।
अब मोपर क्यों न कृपा करते, यह क्या अंधेर जमाना है।
इन्साफ करो मत देर करो, सुखवृन्द भरो भगवाना है। ।3।।
खल कर्म मुझे हैरान किया, तब तुमसों आन पुकारा है।
तुम ही समरथ न न्याय करो, तब वंदे का क्या चारा है।।
खल घालक पालक बालक का, नृपनीति यही जगसारा है
तुम नीति निपुण त्रैलोकपती, तुमही लगि दौर हमारा है। ।4।।

जब से तुमसे पहिचान भई, तब से तुमही को माना है।
तुमरे ही शासन का स्वामी, हमको शरना सरधाना है।।
जिनको तुमरी शरनागत है, तिनसौं जमराज डराना है।
यह सुजस तुम्हारे साँचे का, सब गावत वेद पुराना है।।5।।
जिसने तुमसे दिलदर्द कहा, तिसका तुमने दुख हाना है।
अघ छोटा मोटा नाशि तुरत, सुख दिया तिन्हें मनमाना है।।
पावक सों शीतल नीर किया, औ चीर बढ़ा असमाना है।
भोजन था जिसके पास नहीं, सो किया कुबेर समाना है।।6।।
चिंतामणि पारस कल्पतरू, सुखदायक ये सरधाना है।
तब दासन के सब दास यही, हमरे मन में ठहराना है।।
तुम भक्तन को सुरइंद-पदी, फिर चक्रपतीपद पाना है।
क्या बात कहो विस्तार बड़ी, वे पावैं मुक्ति ठिकाना है।।7।।
गति चार चुरासी लाखविषैं, चिन्मूरत मेरा भटका है।
हो दीनबंधु करुणा-निधान, अबलों न मिटा यह खटका है।।
जब जोग मिला शिवसाधन का, तब विघन कर्म ने हटका है।
तुम विघन हमारे दूर करो सुख देहु निराकुल घटका है।।8।।
गज ग्राह ग्रसित उद्धार लिया, ज्यों अंजन तस्कर तारा है।
ज्यों सागर गोपद-रूप किया, मैना का संकट टारा है।।
ज्यों सूली तें सिंहासन औ, बेड़ी को काट बिडारा है।
त्यों मेरा संकट दूर करो, प्रभु मोकूँ आस तुम्हारा है।।9।।
ज्यों फाटक टेकत पाँय खुला, औ साँप सुमन कर डारा है।
ज्यों खड्ग कुसुम का माल किया, बालक का जहर उतारा है।।

ज्यों सेठ विपत चकचूरि पूर, घर लक्ष्मीसुख विस्तारा है।
त्यों मेरा संकट दूर करो, प्रभु मोकूँ आस तुम्हारा है।।10।।
यद्यपि तुमको रागादि नहीं, यह सत्य सर्वथा जाना है।
चिनमूरति आप अनंत गुनी, नित शुद्ध दशा शिवथाना है।।
तद्यपि भक्तन की पीरि हरो, सुख देत तिन्हें जु सुहाना है।
यह शक्ति अचिंत तुम्हारी का, क्या पावै पार सयाना है।।11।।
दुखखंडन श्रीसुखमंडन का, तुमरा प्रन परम प्रमाना है।
वरदान दया जस कीरत का, तिहुँलोक धुजा फहराना है।।
कमलाधरजी!कमलाकरजी! करिये कमला अमलाना है।
अब मेरी विथा अवलोकि रमापति, रंच न बार लगाना है।।12।।
हो दीनानाथ अनाथहितु, जन दीन अनाथ पुकारी है।
उदयागत कर्मविपाक हलाहल, मोह विथा विस्तारी है।।
ज्यों आप और भवि जीवन की, तत्काल विथा निरवारी है।
त्यों 'वृंदावन' यह अर्ज करै, प्रभु आज हमारी बारी है।।13।।

✦ ✦ ✦

प्रामाणिक, ठोस, मजबूत जीवन बनाना है तो गुरु के पद चिन्हों पर चलते जाना चाहिए।

✦ ✦ ✦

हमारे जीवन में सुख कम और दुःख ज्यादा है, इसका कारण यह कि हमने अपना उपयोग धर्म कमाने में कम और कर्म कमाने में अधिक लगाया है।

मेरी अभिलाषा

संत साधु बन के विचरूँ, वह घड़ी कब आयेगी।
शांति दिल पर मेरे, वैराग्य की छा जायेगी।।

मोह ममता त्याग दूँ मैं, सब कुटुम्ब परिवार से।
छोड़ दूँ झूँठी लगन धन-धान्य अरू घर बार से।।
नेह तज दूँ महल और, मंदिर चमन गुलजार से।
वन में जा डेरा करूँ, मुँह मोड़ इस संसार से।।1।।

इस जगत में जो पदारथ, आ रहे मुझ को नजर।
थिर नहीं है इसमें कोई, हैं यह सब के सब अस्थिर।।
जिन्दगी का क्या भरोसा, यह रही दम-दम गुजर।
दम है जब तक दम में दम है, दम में दम बेखबर।।2।।

कौन-सी वह चीज है, जिस पर लगाऊँ दिल यहाँ।
आज यौवन खिल रहा है, जो कल भला वह फिर कहाँ।।
माल औघन की सब, हकीकत जमाने पर अयाँ।
क्या भरोसा लक्ष्मी का जो, अब यहाँ और कल वहाँ।।3।।

बाप माँ और बहन-भाई, बेटा-बेटी नार क्या।
सब सगे अपनी गरज के, यार क्या परिवार क्या।।
बात मतलब से करें सब, जगत यह संसार क्या।
बिन गरज पूछे न कोई, बात क्या तकरार क्या।।4।।

था अकेला हूँ अकेला, और अकेला ही रहूँ।
जो पड़े दुख मैं सहे, अरु जो पड़े सो मैं सहूँ।।

फिर भला किसको जगत में, अपना हमराही कहूँ।
कौन अपना है सहायक, कौन का शरणा गहूँ।।5।।

काल सर पर काल का, खंजर लिये तैयार है।
कौन बच सकता है इससे, इसका गहरा वार है।।
हाय! जब हर-हर कदम पर, इस तरह से हार है।
फिर न क्यों वह राह पकड़ूँ, सुख का जो भंडार है।।6।।

ज्ञानरूपी जल से अग्नि, क्रोध को शीतल करूँ।
मान-माया लोभ-राग और, द्वेष आदिक परिहरूँ।।
वश में विषयों को करूँ, और सब कषायों को हरूँ।
शुद्ध चित आनंद से मैं, ध्यान आतम का धरूँ।।7।।

जग के सब जीवों से अपना, प्रेम हो और प्यार हो।
और मेरी इस देह से, संसार का उपकार हो।।
ज्ञान का प्रचार हो, और देश का उद्धार हो।
प्रेम और आनंद का, व्यवहार घर-घर बार हो।।8।।

प्रेम का मंदिर बनाकर, ज्ञान देवहिं दूँ बिठा।
शांति और आनंद के, घड़ियाल घण्टे दूँ बजा।।
अरु पुजारी बन के दूँ मैं, सबको आतम रस चखा।
यह करूँ उपदेश जग में, कर भला होगा भला।।9।।

आए कब वह शुभ घड़ी, जब वन बिहारी बन रहूँ।
शांत होकर शांति गंगा का, मैं निर्मल जल पिऊँ।।
ज्योति से गुण ज्ञान को, अज्ञान सब जग का दहूँ।
हो सभी जग का भला, यह बात मैं हर दम चहूँ।।10।।

✦ ✦ ✦

आध्यात्मिक भजन
(शिवराम जी)

जाना नहीं निज आत्मा, ज्ञानी हुये तो क्या हुए।।
ध्याया नहीं निज आत्मा, ध्यानी हुए तो क्या हुए।।1।।
श्रुत सिद्धांत पढ़ लिये, शास्त्रवान बन गए।
आतम रहा बहिरात्मा, पण्डित हुए तो क्या हुए।।2।।
पंच महाव्रत आदरे, घोर तपस्या भी करे।
मन की कषायें ना गई, साधु हुए तो क्या हुए।।3।।
माला के दाने फेरते, मनुवा फिरे बाजार में।
मन का न मन से फेरते, जपिया हुए तो क्या हुए।।4।।
गाके बजाके नाचके, पूजन-भजन सदा किए।
भगवान हृदय में न बसे, पुजारी हुए तो क्या हुए।।5।।
करते न जिनवर दर्श को, खाते सदा अभक्ष्य को।
दिल में जरा दया नहीं, मानव हुए तो क्या हुए।।6।।
मान बड़ाई कारणे, द्रव्य हजारों खर्चते।
घर के तो भाई भूखन मरे, दानी हुए तो क्या हुए।।7।।
रात्रि न भोजन त्यागते, पानी न पीते छानके।
छोड़े नहीं दुर्व्यसन को, जैनी हुए तो क्या हुए।।8।।
औगुण पराए हेरते, दृष्टि न अंतर फेरते।
शिवराम एक ही नाम के, शायर हुए तो क्या हुए।।9।।
जाना नहीं निज आत्मा, ज्ञानी हुए तो क्या हुए।
ध्याया नहीं निज आत्मा, ध्यानी हुए तो क्या हुए।।10।।

इष्ट प्रार्थना
(ज्योति जी)

भावना दिन-रात मेरी, सब सुखी संसार हो
सत्य संयम शील का, व्यवहार घर-घर बार हो
धर्म का परचार हो, अरु देश का उद्धार हो-2
और ये बिगड़ा हुआ, भारत चमन गुलजार हो-2
भावना...............

ज्ञान के अभ्यास से, जीवों का पूर्ण विकास हो-2
धर्म के परचार से, हिंसा का जग से ह्रास हो-2
भावना...............

शांति अरु आनंद का, हर-एक घर में वास हो-2
वीर वाणी पर सभी, संसार का विश्वास हो-2
भावना...............

रोग अरु भय शोक होवे, दूर सब परमात्मा-2
कर सके कल्याण ज्योति, सब जगत की आत्मा-2
भावना...............

+ + +

गुरु से कुछ छिपाने का तात्पर्य है, अपना दर्पण मैला करना।

छहढाला
(पं. दौलतरामजी कृत)

तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता।
शिव स्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकैं।।

प्रथम ढाल

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहैं दुख तैं भयवन्त।
तातैं दुखहारी सुखकार, कहैं सीख गुरू करुणा धार।।1।।
ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्यान।
मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि।।2।।
तास भ्रमण की है बहुकथा, पै कछु कहूँ कही मुनि यथा।
काल अनंत निगोद मंझार, वीत्यो एकेन्द्री तन धार।।3।।
एक श्वास में अठ-दस बार, जन्म्यौ, मर्‌यो, भर्‌यो दुख भार।
निकसि भूमि जल पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो।।4।।
दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणि, त्यों पर्याय लही त्रसतणी।
लट-पिपील-अलि आदि शरीर, धर-धर मर्‌यो सही बहु पीर।।5।।
कबहूँ पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो।
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल पशू हति खाये भूर।।6।।
कबहूँ आप भयो बलहीन, सबलनि करि खायो अतिदीन।
छेदन-भेदन भूख पियास, भार-वहन हिम आतप त्रास।।7।।
वध-बन्धन आदिक दुख घने, कोटि जीभतैं जात न भने।
अति संक्लेश भावतैं मर्‌यो, घोर श्वभ्रसागर में पर्‌यो।।8।।
तहाँ भूमि परसत दुख इसो, बिच्छू सहस डसे नहिं तिसो।
तहाँ राध श्रोणित वाहिनी, कृमि कुल कलित देह दाहिनी।।9।।

सेमर तरूदल जुत असि पत्र, असि ज्यों देहविदारैं तत्र।
मेरू समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय।।10।।
तिल-तिल करैं देह के खण्ड, असुर भिड़ावें दुष्ट प्रचण्ड।
सिंधु नीरतैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूंद लहाय।।11।।
तीन लोक को नाज जु-खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय।
ये दुख बहुसागर लों सहै, करम जोगतैं नरगति लहे।।12।।
जननी उदर वस्यो नवमास, अंग सकुचतैं पाई त्रास,
निकसत जे दुख पाये घोर, तिनको कहत न आवे ओर।।13।।
बालपने में ज्ञान न लह्यो, तरूण समय तरूणीरत रह्यो।।
अर्ध मृतक सम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखै आपनो।।14।।
कभी अकाम निर्जरा करै, भवनत्रिक में सुरतन धरै।
विषय चाह दावानल दह्यो, मरत विलाप करत दुख सह्यो।।15।।
जो विमान वासी हूँ थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुख पाय।
तँह तै चय थावर तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करै।।16।।

दूसरी ढाल
(पद्धरि छंद)

ऐसे मिथ्यादृग ज्ञान-चरण, वश भ्रमत भरत दुःख जन्म मरण।
तातैं इनको तजिये सुजान, सुन तिन संक्षेप कहूँ बखान।।1।।
जीवादि प्रयोजनभूत तत्व, सरधै तिन माहिं विपर्ययत्त्व।
चेतन को है उपयोग रूप, विनमूरत चिन्मूरत अनूप।।2।।
पुद्गल नभ धर्म-अधर्म काल, इनतैं न्यारी है जीव चाल।
ताकों न जान विपरीत मान, करि करैं देह में निज पिछान।।3।।
मैं सुखी-दुखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह-गोधन प्रभाव।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन।।4।।

तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान।
रागादि प्रगट ये दुख दैन, तिन ही को सेवत गिनत चैन।।5।।
शुभ-अशुभ बंध के फल मंझार, रति अरति करै निजपद विसार।
आतमहित हेतु विराग ज्ञान, ते लखै आपको कष्टदान।।6।।
रोके न चाह निज शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय
याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान, सो दुःखदायक अज्ञान जान।।7।।
इन जुत विषयनि में जो प्रवृत्त ताको जानों मिथ्याचरित्र।
यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत सुनिये सु तेह।।8।।
जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषैं चिर दर्शनमोह एव।
अन्तर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अम्बर तैं सनेह।।9।।
धारै कुलिंग लहि महत भाव, ते कुगुरू जन्म-जल उपलनाव।
जे राग-द्वेष मल करि मलीन, वनिता गदादिजुत चिह्नचीन।।10।।
ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भव-भ्रमण छेव।
रागादि भाव हिंसा समेत, दर्वित त्रस थावर मरण खेत।।11।।
जे क्रिया तिन्हें जानहु कुधर्म, तिन सरधै जीव लहे अशर्म।
याकूँ गृहीत मिथ्यात्व जान, अब सुन गृहीत जो हैं अज्ञान।।12।।
एकान्तवाद-दूषित समस्त, विषयादिक पोषक अप्रशस्त।
कपिलादि-रचित श्रुत को अभ्यास, सो है कुबोध बहु देन त्रास।।13।।
जो ख्याति लाभ पूजादि चाह, धरि करन विविध-विध देह-दाह।
आतम-अनात्म के ज्ञानहीन, जे जे करनी तन करन छीन।।14।।
ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आतम के हित पंथ लाग।
जगजाल-भ्रमण को देहु त्याग, अब 'दौलत' निज आतम सुपाग।।15।।

तीसरी ढाल

(नरेन्द्र/जोगीरासा छंद)

आतम को हित है सुख सो सुख, आकुलता बिन कहिये।
आकुलता शिव माँहिं न तातैं, शिव-मग लाग्यो चहिये।।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन शिव, मग सो दुविध विचारो।
जो सत्यारथ-रूप सो निश्चय, कारण सो ववहारो।।1।।

परद्रव्यन तै भिन्न आप में, रुचि सम्यक्त्व भला है।
आपरूप को जानपनो सो, सम्यग्ज्ञान कला है।।
आपरूप में लीन रहे थिर, सम्यक् चारित्र सोई।
अब व्यवहार मोक्ष-मग सुनिये, हेतु नियत को होई।।2।।

जीव-अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बंधरु संवर जानो।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्यों का त्यों सरधानो।।
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रुप बखानों।
तिनको सुन सामान्य विशेषैं, दृढ़ प्रतीति उर आनो।।3।।

बहिरातम अन्तर-आतम, परमातम जीव त्रिधा है।
देह-जीव को एक गिनै, बहिरातम तत्त्व मुधा है।।
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के अंतर आतम-ज्ञानी।
द्विविध संग विन शुद्ध उपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी।।4।।

मध्यम अंतर आतम हैं जे देशव्रती अनगारी।
जघन कहे अविरत समदृष्टि, तीनों शिव-मगचारी।।
सकल-निकल परमातम द्वैविध, तिन में घाति निवारी।
श्री अरहंत सकल परमातम, लोकालोक निहारी।।5।।

ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्म-मल वर्जित सिद्ध महंता।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगें शर्म अनंता।।
बहिरातमता हेय जानि तजि, अंतर-आतम हू जैं।
परमातम को ध्याय निरंतर जो नित आनंद पूजै।।6।।
चेतनताबिन सो अजीव हैं, पंच भेद ताके हैं।
पुद्गल पंच वरन रस गंध, दो फरस वसू जाके हैं।।
जिय पुद्गल को चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनुरूपी।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई जिन बिन-मूर्ति निरूपी।।7।।
सकल द्रव्य को वास जास में, सो आकाश पिछानो।
नियत वर्तना निश-दिन सो, व्यवहारकाल परिमानो।।
यों अजीव, अब आस्रव सुनिये, मन-वच-काय त्रियोगा।
मिथ्या अविरति अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा।।8।।
ये ही आतम को दुःख कारण, तातैं इनको तजिये।
जीव प्रदेश बँधै विधिसौंसो, बंधन कबहुँ न सजिये।।
शम-दम तैं जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये।
तप-बलतैं विधि-झरन निरजरा, ताहि सदा आचरिये।।9।।
सकल कर्म तैं रहित अवस्था सो शिव थिर सुखकारी।
इह विधि जो सरधा तत्त्वन की, सो समकित व्यवहारी।।
देव जिनेन्द्र गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो।
ये हू मान समकित को कारण, अष्ट अंगजुत धारो।।10।।
वसु मद टारि निवारि त्रिशठता, षट् अनायतन त्यागो।
शंकादिक वसु दोष बिना, संवेगादिक चित पागो।।
अष्ट अंग अरु दोष पचीसों, तिन संक्षेपै कहिये।
बिन जाने तैं दोष-गुणन को, कैसे तजिये गहिये।।11।।

जिन-वच में शंका न धार, वृष भव सुख वांछा भानै।
मुनि-तन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व-कुतत्त्व पिछानै।।
निज-गुण अरु पर-औगुण ढांकै, वा निज धर्म बढ़ावैं।
कामादिक कर वृषतैं चिगते, निज-पर को सु दिढ़ावे।।12।।
धर्मी सों गौ-वच्छ प्रीति सम, कर जिन धर्म दिपावे।
इन गुनतैं विपरीत दोष वसु, तिनको सतत खिपावे।।
पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै।
मद न रूप को मद न ज्ञान को, धन-बल कौ मद भानै।।13।।
तप को मद न मद जु प्रभुता कौ, करै न सो निज जानै।
मद धारै तो यही दोष बसु, समकित को मल ठानै।।
कुगुरु कुदेव कुवृष सेवक की, नहिं प्रशंस उचरै हैं।
जिन-मुनि जिन-श्रुत बिन, कुगुरादिक तिन्हें न नमन करै हैं।।14।।
दोष-रहित गुण-सहित सुधी जे, सम्यग्दर्श सजे हैं।
चरितमोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजै हैं।।
गेही पै गृह में न रचे ज्यों, जल तैं भिन्न कमल है।
नगर-नारि को प्यार यथा, कादे में हेम अमल है।।15।।
प्रथम नरक बिन षट् भू ज्योतिष, वान भवन षँड नारी।
थावर विकलत्रय पशु में नहिं, उपजत सम्यक् धारी।।
तीन लोक तिहुँकाल माँहिं नहिं, दर्शन सो सुखकारी।
सकल धरम को मूल यही, इस बिन करनी दुःखकारी।।16।।
मोक्षमहल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान-चरित्रा।
सम्यकता न लहैं सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा।।
"दौल" समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवे।।17।।

चौथी ढाल

दोहा

सम्यक श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान।
स्व-पर अर्थ बहु धर्म जुत, जो प्रगटावन भान।।

(रोला)

सम्यक साथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधौ।
लक्षण श्रद्धा जान, दुहू में भेद अबाधौ।।
सम्यक कारण जान, ज्ञान कारज है सोई।
युगपत होते हु प्रकाश दीपक तैं होई।।1।।

तास भेद दो हैं परोक्ष, परतछि तिन मांही।
मति श्रुत दोय परोक्ष अक्ष मन तैं उपजाही।।
अवधिज्ञान मनपर्जय दो हैं देश प्रतच्छा।
द्रव्य क्षेत्र परिमाण लिये, जानै जिय स्वच्छा।।2।।

सकल द्रव्य के गुन, अनंत परजाय अनंता।
जानै एकै काल प्रगट, केवलि भगवंता।
ज्ञान समान न आन, जगत में सुख को कारन।
इहि परमामृत जन्म जरा-मृतु रोग निवारन।।3।।

कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान विन कर्म झरें जे।
ज्ञानी के छिन माहिं, त्रिगुप्ति तैं सहज टरें ते।।
मुनिव्रत धार अनंत बार ग्रीवक उपजायौ।
पै निज आतम ज्ञान विना, सुख लेश न पायो।।4।।

तातैं जिनवर कथित, तत्त्व अभ्यास करीजै।
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपो लख लीजै।।

यह मानुष पर्याय, सुकुल, सुनिवो जिनवानी।
इह विधि गये न मिलें सुमणि ज्यों उदधि समानी।।5।।
धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै।
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै।।
तास ज्ञान को कारण, स्व-पर विवेक बखानौ।
कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आनौ।।6।।
जे पूरब शिव गये जाहिं अरु आगे जैहैं।
सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहैं हैं।।
विषय चाह दव दाह, जगत जन अरनि दझावै।
तास उपाय न आन, ज्ञान घनघान बुझावै।।7।।
पुण्य पाप फल माहिं, हरख बिलखौ मत भाई।
यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै फिर थाई।
लाख बात की बात यहै, निश्चय उर लाओ।
तोरि सकल जग दंद-फंद, निज आतम ध्याओ।।8।।
सम्यग्ज्ञानी होय बहुरि, दृिढ़ चारित लीजै।
एक देश अरु सकलदेश, तसु भेद कहीजै।।
त्रसहिंसा को त्याग, वृथा थावर न संघारै।
पर वधकार कठोर निंद्य, नहिं वयन उचारै।।9।।
जल मृतिका विन और नाहिं कछु गहे अदत्ता।
निज वनिता विन सकल, नारि सों रहै विरत्ता।।
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै।
दश दिश गमन प्रमाण ठान, तसु सीम न नाखै।।10।।
ताहू में फिर ग्राम, गली गृह बाग बजारा।
गमनागमन प्रमाण, ठान अन सकल निवारा।।

काहू की धन-हानि, किसी जय-हार न चिन्तैं।
देय न सो उपदेश होय, अघ बनज कृषी तैं।।11।।
कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै।
असि धनु हल हिंसोपकरन, नहिं दे यश लाधै।।
राग-द्वेष करतार कथा, कबहुँ न सुनीजै।
और हू अनरथ दण्ड हेतु अघ, तिन्हैं न कीजै।।12।।
धर उर समता भाव, सदा सामायिक करिये।
परव चतुष्टय माहिं, पाप तज प्रोषध धरिये।।
भोग और उपभोग, नियम करि ममत निवारै।
मुनि को भोजन देय, फेर निज करहिं अहारै।।13।।
बारह व्रत के अतिचार, पन-पन न लगावै।
मरण समय सन्यास धार, तसु दोष नशावै।।
यों श्रावक व्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावै।
तहँ तैं चय नर जन्म पाय, मुनि ह्वै शिव जावै।।14।।

पंचम ढाल

बारह भावना

(चाल छन्द)

मुनि सकल व्रती बड़भागी, भवभोगन तैं वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिन्तैं अनुप्रेक्षा भाई।।1।।
इन चिन्तत समसुख जागै, जिमि ज्वलन पवन के लागै।
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिव सुखठानै।।2।।
जोवन-गृह-गोधन-नारी, हय गय जन आज्ञाकारी।
इंद्रिय भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई।।3।।

सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दले ते।
मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावै कोई।।4।।
चहुंगति दुख जीव भरै हैं, परिवर्तन पंच करै हैं।
सब विधि संसार असारा, यामैं सुख नाहिं लगारा।।5।।
शुभ-अशुभ करम फल जेते, भोगे जिय एकहि तेते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी।।6।।
जल पय ज्यों जिय तन मेला, पै भिन्न भिन्न नहिं भेला।
तो प्रगट जुदे धनधामा, क्यों ह्वै इक मिलि सुत रामा।।7।।
पल रुधिर राध मल थैली, कीकस वसादितैं मैली।
नव द्वार वहैं घिनकारी, असि देह करै किमि यारी।।8।।
जो योगन की चपलाई, ताते ह्वै आस्रव भाई।
आस्रव दुःखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हैं निरवेरे।।9।।
जिन पुण्य-पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिनही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके।।10।।
निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना।
तप करि जो कर्म खिपावै, सोई शिवसुख दरसावै।।11।।
किनहूं न करै न धरै को, षड्द्रव्यमयी न हरै को।
सो लोक माँहि बिन समता, दुख सहै जीव नितभ्रमता।।12।।
अंतिम ग्रीवक लौं की हद, पायो अनंत विरियाँ पद।
पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ।।13।।
जो भावमोह तैं न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारे।।14।।
सो धर्म मुनिन करि धरिये, तिनकी करतूति उचरिये।
ताको सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी।।15।।

छठवी ढाल

(हरिगीतिका)

षट्काय जीव न हनन तैं, सब विधि दरब हिंसा टरी।
रागादि भाव निवार तैं, हिंसा न भावित अवतरी।।
जिनके न लेश मृषा न जल, मृण हूँ बिना दीयौ गहै।
अठ-दश सहस विधि शील घर, चिद्ब्रह्म में नित रमि रहैं।।1।।
अंतर चतुर्दस भेद बाहर, संग दसधा तैं टलैं।
परमाद तजि चौकर मही लखि, समिति ईर्या तैं चलैं।।
जग सुहित कर सब अहित हर, श्रुति सुखद सब संशय हरैं।
भ्रम-रोग हर जिनके वचन, मुख चंद्रतैं अमृत झरैं।।2।।
छयालीस दोष बिना सुकुल, श्रावक तनैं घर अशन को।
लैं तप बढ़ावन हेतु नहिं तन, पोषते तजि रसन को।।
शुचि ज्ञान संजम उपकरण, लखि कै गहैं लखि कैं धरैं।
निर्जन्तु थान विलोक तन मल, मूत्र श्लेषम परिहरैं।।3।।
सम्यक् प्रकार निरोध मन-वच, काय आतम ध्यावते।
तिन सुथिर मुद्रा देख मृगगण, उपल खाज खुजावते।।
रस रूप गंध तथा फरस अरु, शब्द शुभ असुहावने।
तिनमें न राग विरोध, पंचेन्द्रिय जयन पद पावने।।4।।
समता सम्हारैं थुति उचारै, वंदना जिनदेव को।
नित करैं श्रुति-रति करैं प्रतिक्रम, तजे तन अहमेव को।।
जिनके न न्हौंन न दंतधोवन, लेश अम्बर आवरन।
भू माँहिं पिछली रयनि में, कछु शयन एकासन करन।।5।।
इक वार दिन में लैं अहार, खड़े अलप निज पान में।

कचलोंच करत न डरत परिषह, सों लगे निज-ध्यान में।।
अरि-मित्र महल-मसान कंचन, काच निंदन-थुतिकरन।
अर्घावतारन असि-प्रहारन मैं, सदा समता धरन।।6।।
तप तपें द्वादश धरैं वृष दश, रत्नत्रय सेवैं सदा।
मुनि साथ में वा एक विचरैं, चहैं नहि भव सुख कदा।।
यों हैं सकल संयम चरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब।
जिस होत प्रगटै आपनी निधि, मिटै पर की प्रवृत्ति सब।।7।।
जिन परम पैनी सुबुधि छैनी, डारि अंतर भेदिया।
वरणादि अरु रागादि तैं, निज भाव को न्यारा किया।
निज माँहिं निज के हेतु, निजकर आप को आपै गह्यो।
गुण-गुणी ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय, मंझार कछु भेद न रह्यो।।8।।
जहाँ ध्यान-ध्याता-ध्येय को, न विकल्प वच-भेद न जहाँ।
चिद्भाव कर्मचिदेश करता, चेतना किरिया तहाँ।।
तीनों अभिन्न अखिन्न सुध, उपयोग की निश्चल दसा।
प्रगटी जहाँ दृग-ज्ञान-व्रत ये, तीनधा एकै लसा।।9।।
परमाण-नय-निक्षेप को, न उद्योत अनुभव में दिखै।
दृग-ज्ञान-सुख-बलमय सदा, नहिं आन भाव जु मो विखैं।।
मैं साध्य-साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनि तैं।
चित्पिण्ड चण्ड अखण्ड सुगुण, करण्ड च्युति पुनि कलनितैं।।10।।
यों चिन्त्य निज में थिर भये, तिन अकथ जो आनंद लह्यो।
सो इंद्र नाग नरेन्द्र वा, अहमिन्द्र के नाहीं कह्यो।।
तब ही शुक्ल ध्यानाग्नि करि, चउघाति विधि कानन दह्यो।
सब लख्यो केवलज्ञान करि, भविलोक को शिवमग कह्यो।।11।।

पुनि घाति शेष अघाति विधि, छिन माहिं अष्टम भू वसै।
वसु कर्म विनसैं सुगुण वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसैं।।
संसार खार अपार, पारावार तरि तीरहिं गये।
अविकार अकल अरूप शुचि, चिद्रूप अविनाशी भये।।12।।
निज माँहिं लोक अलोक, गुण-परजाय प्रतिबिम्बित भये।
रहि हैं अनंतानंत काल, यथा तथा शिव परिणये।।
धनि धन्य हैं जे जीव नरभव, पाय यह कारज किया।
तिन ही अनादी भ्रमण पंच प्रकार, तजि वर सुख लिया।।13।।
मुख्योपचार दु भेद यों, बड़भागि रत्नत्रय धरैं।
अरु धरेंगें ते शिव लहैं तिन सुयस-जल जग-मल हरैं।।
इमि जानि आलस हानि, साहस ठानि यह सिख आदरो।
जबलों न रोग जरा गहे, तब लौं झटिति निजहित करो।।14।।
यह राग आग दहे सदा, तातैं समामृत सेइये।
चिर भजे विषय-कषाय अब तो, त्याग निज-पद बेइये।।
कहा रच्यो पर-पद में न तेरो, पद यहै क्यों दुख सहै।
अब 'दौल' होउ सुखी स्व-पद रचि, दाव मत चूको यहै।।15।।

(दोहा)

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज सुकल वैशाख।
कर्‌यो तत्त्व उपदेश यह, लखि 'बुधजन' की भाख।।
लघु-धी तथा प्रमादि तैं, शब्द-अर्थ की भूल।
सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पावौ भव-कूल।।16।।

✦ ✦ ✦

उपवास से बड़ी तपस्या, गुरु की आज्ञा का पालन है।

सामायिक पाठ

प्रेम भाव हो सब जीवों से, गुणी जनों में हर्ष प्रभो।
करुणा स्त्रोत बहें दुखियों पर, दुर्जन में मध्यस्थ विभो।।1।।
यह अनन्त बल-शील आत्मा, हो शरीर से भिन्न प्रभो।
ज्यों होती तलवार म्यान से, वह अनन्त बल दो मुझको।।2।।
सुख-दुख बैरी बन्धु वर्ग में, काँच-कनक में समता हो।
वन-उपवन प्रासाद कुटी में, नहीं खेद नहिं ममता हो।।3।।
जिस सुन्दरतम पथ पर चलकर, जीते मोह मान मन्मथ।
वह सुन्दर पथ ही प्रभु! मेरा, बना रहे अनुशीलन पथ।।4।।
एकेंद्रिय आदिक प्राणी की, यदि मैंने हिंसा की हो।
शुद्ध हृदय से कहता हूँ वह, निष्फल हो दुष्कृत्य प्रभो।।5।।
मोक्षमार्ग प्रतिकूल प्रवर्तन, जो कुछ किया कषायों से।
विपथ-गमन सब कालुष मेरे, मिट जावें सद्भावों से।।6।।
चतुर वैद्य विष विक्षत करता, त्यौं प्रभु! मैं भी आदि उपांत।
अपनी निन्दा आलोचन से, करता हूँ पापों को शांत।।7।।
सत्य अहिंसादिक व्रत में भी, मैंने हृदय मलीन किया।
व्रत विपरीत प्रवर्तन करके, शीलाचरण विलीन किया।।8।।
कभी वासना की सरिता का, गहन सलिल मुझ पर छाया।
पी-पीकर विषयों की मदिरा, मुझमें पागलपन आया।।9।।
मैंने छली और मायावी, हो असत्य-आचरण किया।
पर-निन्दा गाली चुगली, जो मुंह पर आया वमन किया।।10।।
निरभिमान उज्ज्वल मानस हो, सदा सत्य का ध्यान रहे।

निर्मल-जल की सरिता सदृश, हिय में निर्मल ज्ञान बहे।।11।।
मुनि चक्री शक्री के हिय में, जिस अनन्त का ध्यान रहे।
गाते वेद पुराण जिसे वह, परम देव मम हृदय रहे।।12।।
दर्शन-ज्ञान स्वभावी जिसने, सब विकार हो वमन किये।
परम ध्यान गोचर परमातम, परम देव मम हृदय रहे।।13।।
जो भव-दुःख का विध्वंसक है, विश्व-विलोकी जिसका ज्ञान।
योगी-जन के ध्यानगम्य वह, बसे हृदय में देव महान।।14।।
मुक्ति-मार्ग का दिग्दर्शक है, जनम मरण से परम अतीत।
निष्कलंक त्रैलोक्य-दर्शी वह, देव रहे मम हृदय समीप।।15।।
निखिल विश्व के वशीकरण वे, राग रहे ना द्वेष रहे।
शुद्ध अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरुपी, परम देव मम हृदय रहे।।16।।
देख रहा जो निखिल विश्व को, कर्म-कलंक-विहीन विचित्र।
स्वच्छ विनिर्मल निर्विकार वह, देव करे मम हृदय पवित्र।।17।।
कर्म-कलंक अछूत न जिसको, कभी छू सके दिव्य प्रकाश।
मोह तिमिर को भेद चला जो, परमशरण मुझको वह आप्त।।18।।
जिसकी दिव्यज्योति के आगे, फीका पड़ता सूर्य प्रकाश।
स्वयं ज्ञानमय स्वपर-प्रकाशी, परमशरण मुझको वह आप्त।।19।।
जिसके ज्ञानरूप दर्पण में, स्पष्ट झलकते सभी पदार्थ।
आदि अंत से रहित शांत शिव, परमशरण मुझको वह आप्त।।20।।
जैसे अग्नि जलाती तरु को, तैसे नष्ट हुए स्वयमेव।
भय-विषाद चिन्ता नहीं जिनके, परमशरण मुझको वह देव।।21।।
तृण, चौकी शिल, शैलशिखर नहिं, आत्म समाधि के आसन।
संस्तर, पूजा संघ सम्मिलन, नहीं समाधि के साधन।।22।।

इष्ट-वियोग अनिष्ट योग में, विश्व मनाता है मातम।
हेय सभी हैं विषय वासना, उपादेय निर्मल आतम।।23।।
बाह्य जगत कुछ भी नहिं मेरा, और न बाह्य जगत का मैं।
यह निश्चय कर छोड़ बाह्य को, मुक्ति हेतु नित स्वस्थ रमें।24।।
अपनी निधि तो अपने में है, बाह्य वस्तु में व्यर्थ प्रयास।
जग का सुख तो मृगतृष्णा है, झूठे हैं उसके पुरुषार्थ।।25।।
अक्षय है शाश्वत है आत्मा, निर्मल ज्ञान स्वभावी है।
जो कुछ बाहर है सब पर है, कर्माधीन विनाशी हैं।।26।।
तन से जिसका ऐक्य नहीं है, सुत तिय मित्रों से कैसे?
चर्म दूर होने पर तन से, रोम समूह रहें कैसे?।।27।।
महा कष्ट पाता जो करता, पर पदार्थ जड़-देह संयोग।
मोक्ष महल का पथ है सीधा, जड़ चेतन का पूर्ण वियोग।।28।।
जो संसार पतन के कारण, उन विकल्प जालों को छोड़।
निर्विकल्प, निर्द्वन्द आत्मा, फिर-फिर लीन उसी में हो।।29।।
स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ, फल निश्चय ही वे देते।
करें आप फल देय अन्य तो, स्वयं किये निष्फल होते।।30।।
अपने कर्म सिवाय जीव को, कोई न फल देता कुछ भी।
'पर देता है' यह विचार तज, स्थिर हो छोड़ प्रमाद बुद्धि।।31।।
निर्मल, सत्य, शिवं सुन्दर हैं, 'अमित गति' वह देव महान।
शाश्वत निज में अनुभव करते, पाते निर्मल पद निर्वाण।।32।।
इन बत्तीस पदों से जो कोई, परमातम को ध्याते हैं।
साँची सामायिक को पाकर, भवोदधि तर जाते हैं।।33।।

"श्री अमितगति सूरि विरचित"

✦ ✦ ✦

सामायिक पाठ

परमात्म द्वात्रिंशतिका

(हिन्दी पद्यानुवाद श्री रामचरित उपाध्याय)

नित देव! मेरी आत्मा धारण करे इस नेम को,
मैत्री करे सब प्राणियों से, गुणी जनों से प्रेम को।
उन पर दया करती रहे, जो दुख-ग्राह ग्रहीत हैं,
उनसे उदासी सी रहे जो धर्म से विपरीत हैं।।1।।
करके कृपा कुछ शक्ति ऐसी दीजिए मुझ में प्रभो।
तलवार को ज्यों म्यान से करते विलग हैं हे विभो!!
गतदोष आत्मा शक्तिशाली है मिली मम अंग से,
उसको विलग उस भाँति करने के लिए ऋजु ढंग से।।2।।
हे नाथ! मेरे चित्त में समता सदा भरपूर हो,
सम्पूर्ण ममता की कुमति मेरे हृदय से दूर हो।
वन में, भवन में, दुःख में, सुख में नहीं कुछ भेद हो,
अरि-मित्र में, मिलने-बिछुड़ने में न हर्ष न खेद हो।।3।।
अतिशय घनी तम-राशि को दीपक हटाते हैं यथा,
दोनों कमल-पद आपके अज्ञान-तम हरते तथा।
प्रतिबिम्ब सम स्थिर रूप वे, मेरे हृदय में लीन हों,
मुनिनाथ! कीलित-तुल्य वे, उर पर सदा आसीन हों।।4।।
यदि एक-इन्द्रिय आदि देही, घूमते फिरते मही,
जिनदेव! मेरी भूल से पीड़ित हुए होवें कहीं।
टुकड़े हुए हों, मल गये हों, चोट खाये हों कभी,

तो नाथ! वे दुष्टाचरण मेरे बने झूँठे सभी।।5।।
सन्मुक्ति के सन्मार्ग से प्रतिकूल पथ मैंने लिया,
पंचेन्द्रियों चारों कषायों में स्वमन मैंने किया।
इस हेतु शुद्ध चरित्र का जो लोप मुझसे हो गया,
दुष्कर्म वह मिथ्यात्व को हो प्राप्त प्रभु! करिए दया।।6।।
चारों कषायों से, वचन, मन, काय से जो पाप है
मुझसे हुआ, हे नाथ! वह कारण हुआ भव-ताप है।
अब मारता हूँ मैं उसे आलोचना-निन्दादि से,
ज्यों सकल विष को वैद्यवर है मारता मन्त्रादि से।।7।।
जिनदेव! शुद्ध चारित्र का मुझसे अतिक्रम जो हुआ,
अज्ञान और प्रमाद से व्रत का व्यतिक्रम जो हुआ।
अतिचार और अनाचरण जो जो हुए मुझसे प्रभो!
सबकी मलिनता मेटने को प्रतिक्रमण करता विभो!।।8।।
मन की विमलता नष्ट होने को अतिक्रम है कहा,
और शीलचर्या के विलंघन को व्यतिक्रम है कहा।
हे नाथ! विषयों में लपटने को कहा अतिचार है,
आसक्त अतिशय विषय में रहना महाऽनाचार है।।9।।
यदि अर्थ मात्रा वाक्य में पद में पड़ी त्रुटि हो कहीं,
तो भूल से ही वह हुई, मैंने उसे जाना नहीं।
जिनदेव वाणी! तो क्षमा उसको तुरत कर दीजिये,
मेरे हृदय में देवि! केवलज्ञान को भर दीजिये।।10।।
हे देवि! तेरी वन्दना मैं कर रहा हूँ इसलिये,
चिन्तामणि प्रभु हैं सभी वरदान देने के लिये।

परिणाम-शुद्धि समाधि मुझमें बोधि का संचार हो,
हो प्राप्ति स्वात्मा की तथा शिवसौख्य की भवपार हो।।11।।
मुनिनायकों के वृन्द जिसको स्मरण करते हैं सदा,
जिसका सभी नर अमरपति भी स्तवन करते हैं सदा।
सच्छास्त्र वेद-पुराण जिसको सर्वदा हैं गा रहे,
वह देव का भी देव बस मेरे हृदय में आ रहे।।12।।
जो अन्तरहित सुबोध-दर्शन और सौख्यस्वरूप है,
जो सब विकारों से रहित, जिससे अलग भवकूप है।
मिलता बिना न समाधि जो, परमात्म जिसका नाम है,
देवेश वह उर आ बसे मेरा खुला हृद्धाम है।।13।।
जो काट देता है जगत के दुःख निर्मित जाल को,
जो देख लेता है जगत की भीतरी भी चाल को।
योगी जिसे हैं देख सकते, अन्तरात्मा जो स्वयम्,
देवेश! वह मेरे हृदय-पुर का निवासी हो स्वयम्।।14।।
कैवल्य के सन्मार्ग को दिखला रहा है जो हमें,
जो जन्म के या मरण के पड़ता न दुख सन्दोह में।
अशरीर हो त्रैलोक्यदर्शी दूर है कुकलंक से,
देवेश वह आकर लगे मेरे हृदय के अंङ्क से।।15।।
अपना लिया है निखिल तनुधारी-निबहने ही जिसे,
रागादि दोष-व्यूह भी छू तक नहीं सकता जिसे।
जो ज्ञानमय हैं, नित्य है, सर्वेन्द्रियों से हीन हैं,
जिनदेव देवेश्वर वही मेरे हृदय में लीन हैं।।16।।
संसार की सब वस्तुओं में ज्ञान जिसका व्याप्त है,

जो कर्म-बन्धन हीन, बुद्ध, विशुद्ध सिद्धी प्राप्त है।
जो ध्यान करने से मिटा देता सकल कुविकार को,
देवेश वह शोभित करे मेरे हृदय-आगार को।।17।।
तम संघ जैसे सूर्य-किरणों को न छू सकता कहीं,
उस भाँति कर्म-कलंक दोषाकर जिसे छूता नहीं।
जो है निरंजन वस्त्वपेक्षा, नित्य भी है, एक है,
उस आप्त प्रभु की शरण में हूँ प्राप्त जो कि अनेक है।।18।।
यह दिवसनायक लोक का जिसमें कभी रहता नहीं,
त्रैलोक्य-भाषक-ज्ञान-रवि पर है वहाँ रहता सही।
जो देव स्वात्मा में सदा स्थिर-रूपता को प्राप्त हैं,
मैं हूँ उसी की शरण में, जो देववर है, आप्त हैं।।19।।
अवलोकने पर ज्ञान में जिसके सकल संसार ही
है स्पष्ट दिखता, एक से है दूसरा मिल कर नहीं।
जो शुद्ध, शिव हैं, शांत भी हैं, नित्यता को प्राप्त है,
उसकी शरण को प्राप्त हूँ, जो देववर हैं आप्त हैं।।20।।
वृक्षावली जैसे अनल की लपट से रहती नहीं,
त्यों शोक, मन्मथ, मान को रहने दिया जिसने नहीं।
भय, मोह, नींद, विषाद, चिन्ता भी न जिसको व्याप्त है,
उसकी शरण में हूँ गिरा, जो देववर हैं आप्त हैं।।21।।
विधिवत् शुभासन घास का या भूमिका बनता नहीं,
चौकी, शिला को ही सुभासन मानती बुधता नहीं।
जिससे कषायें-इन्द्रियाँ खटपट मचाती हैं नहीं,
आसन सुधी जन के लिये है आत्मा निर्मल वहीं।।22।।

हे भद्र! आसन, लोक पूजा, संघ की संगति तथा,
ये सब समाधी के न साधन, वास्तविक में है प्रथा।
सम्पूर्ण बाहर-वासना को इसलिये तू छोड़ दे,
अध्यात्म में तू हर घड़ी होकर निरत रति जोड़दे।।23।।
जो बाहरी हैं वस्तुएँ, वे हैं नहीं मेरी कहीं,
उस भाँति हो सकता कहीं उनका कभी मैं भी नहीं।
यों समझ बाह्यआडम्बरों को छोड़ निश्चित रूप से,
हे भद्र! हो जा स्वस्थ तू, बच जायेगा भवकूप से।।24।।
निज को निजात्मा-मध्य में ही सम्यगवलोकन करें,
तू दर्शन-प्रज्ञानमय है, शुद्ध से भी है परे।
एकाग्र जिसका चित्त है तू सत्य इसको मानना,
चाहे कहीं भी हो समाधी-प्राप्त उसको जानना।।25।।
मेरी अकेली आत्मा परिवर्तनों से हीन है,
अतिशय विनिर्मल है सदा सद्ज्ञान में ही लीन है।
जो अन्य सब हैं वस्तुएँ वे ऊपरी ही हैं सभी,
निज कर्म से उत्पन्न है अविनाशिता क्यों हो कभी।।26।।
है एकता जब देह के भी साथ में जिसकी नहीं,
पुत्रादिकों के साथ उसका ऐक्य फिर क्यों हो कहीं।
जब अंग-भर से मनुज के चमड़ा अलग हो जायेगा,
तो रोंगटों का छिद्रगण कैसे नहीं खो जायेगा।।27।।
संसाररूपी गहन में है जीव बहु दुख भोगता,
वह बाहरी सब वस्तुओं के साथ कर संयोगता।
यदि मुक्ति की है चाह तो फिर जीवगण! सुन लीजिये,

मन से-वचन से-काय से उसको अलग कर दीजिये।।28।।
देही! विकल्पित जाल को तू दूर कर दे शीघ्र ही,
संसार-वन में डालने का मुख्य कारण है यही।
तू सर्वदा सबसे अलग निज आत्मा को देखना,
परमात्मा के तत्त्व में तू लीन निज को लेखना।।29।।
पहले समय में आत्मा ने कर्म हैं जैसे किए,
वैसे शुभाशुभ फल यहाँ पर इस समय उसने लिए।
यदि दूसरे के कर्म का फल जीव को हो जाये तो,
हे जीवगण! फिर सफलता निज कर्म की खो जाये तो।।30।।
अपने उपार्जित कर्म फल को जीव पाते हैं सभी,
उसके सिवा कोई किसी को कुछ नहीं देता कभी।
ऐसा समझना चाहिये एकाग्र मन होकर सदा,
'दाता अपर है भोग का' इस बुद्धि को खोकर सदा।।31।।
सबसे अलग परमात्मा है, अमितगति से बन्द्य है,
हे जीवगण! वह सर्वदा सब भाँति ही अनवद्य है।
मन से उसी परमात्मा को ध्यान मे जो लाएगा,
वह श्रेष्ठ लक्ष्मी के निकेतन मुक्ति पद को पाएगा।।32।।

पढ़कर इन द्वात्रिंश पद्य को, लखता जो परमात्म वन्द्य को।
वह अनन्यमन हो जाता है, मोक्ष-निकेतन को पाता है।।33।।

सामायिक पाठ
(श्री पं. महाचन्दजी कृत)
1. प्रतिक्रमण कर्म

काल अनन्त भ्रम्यो जग में सहिये दुःख भारी।
जन्म-मरण नित किये पाप को हैं अधिकारी।।
कोटि भवांतर माहिं मिलन दुर्लभ सामायिक।
धन्य आज मैं भयो योग मिलियो सुख दायक।।1।।

हे सर्वज्ञ जिनेश! किये जे पाप जु मैं अब।
ते सब मन-वच-काय-योग की गुप्ति बिना लभ।।
आप समीप हजूर माहिं मैं खड़ो खड़ो सब।
दोष कहूँ सो सुनो करो नठ दुःख देहिं जब।।2।।

क्रोध मान मद लोभ मोह माया वश प्रानी।
दुःख सहित जे किये दया तिनकी नहिं आनी।।
बिना प्रयोजन एकेन्द्रिय वि-ति चउ पंचेन्द्रिय।
आप प्रसादहिं मिटै दोष जो लग्यो मोहि जिय।।3।।

आपस में इक ठौर थापकरि जे दुःख दीने।
पेलि दिये पग तलें दाबिकरि प्राण हरीने।।
आप जगत के जीव जिते तिन सबके नायक।
अरज करुँ मैं सुनो दोष मेटो दुःख दायक।।4।।

अंजन आदिक चोर महा घन घोर पाप मय।
तिनके जे अपराध भये ते क्षमा क्षमा किय।।
मेरे जे अब दोष भये ते क्षमहुँ दयानिधि।
यह पडिकोणो कियो आदि षटकर्म माहिं विधि।।5।।

2. प्रत्याख्यान कर्म

जो प्रमाद वशि होय विराधे जीव घनेरे।
तिनको जो अपराध भयो मेरे अघ ढ़ेरे।।
सो सब झूठों होउ जगतपतिके परसादे
जा प्रसाद तें मिलैं सर्व सुख दुःख न लाधे।।6।।

मैं पापी निर्लज्ज दया करि हीन महा शठ।
किये पाप अघ ढेर पाप मति होय चित्त दुठ।।
निंदूं हूँ मैं बार-बार निज जियको गरहूँ।
सब विधि धर्म उपाय पाय फिर पापहिं करहूँ।।7।।

दुर्लभ है नर जन्म तथा श्रावक कुल भारी।
सत संगति संजोग धर्म जिन श्रद्धा धारी।।
जिन वचनामृत धार समावर्ते जिनवानी।
तो हू जीव संहारे धिक्-धिक्-धिक् हम जानी।।8।।

इन्द्रिय लम्पट होय खोय निज ज्ञान जमा सब।
अज्ञानी जिमि करे तिसि विधि हिंसक ह्वै अब।।
गमनागमन करंतो जीव विराधे भोले।
ते सब दोष किये निंदूं अब मन वच तन तोले।।9।।

आलोचन विधि थकी दोष लागे जु घनेरे।
ते सब दोष विनाश होउ तुम तें जिन मेरे।।
बार-बार इस भांति मोह मद दोष कुटिलता।
ईर्षादिक तें भये, निंदिये जे भय भीता।।10।।

3. सामायिक कर्म

सब जीवन में मेरे समता भाव जग्यो है।
सब जिय मो सम समता राखो भाव लग्यो है।।
आर्त रौद्र द्वय ध्यान छाँडि करहूँ सामायिक।
संजम मो कब शुद्ध होय यह भाव बधायक।।11।।

पृथ्वी जल अरु अग्नि वायु चउ काय वनस्पति।
पंचहि थावर माहिं तथा त्रस जीव बसै जित।।
बेइन्द्रिय तिय चउ पंचेन्द्रिय माहिं जीव सब।
तिनते क्षमा कराऊं मुझ पर क्षमा करो अब।।12।।

इस अवसर में मेरे सब सम कंचन अरु तृण।
महल मसान समान शत्रु अरु मित्रहि सम गण।।
जामन मरण समान जानि हम समता कीनी।
सामायिक का काल जितै यह भाव नवीनी।।13।।

मेरो है इक आतम तामें ममत जु कीनो।
और सबै सम भिन्न जानि समता रस भीनो।।
मातृ-पिता सुत बन्धु मित्र तिय आदि सबै यह।
मोतें न्यारे जानि जथारथ रुप करयो गह।।14।।

मैं अनादि जग जाल माँहि फँसि रुप न जाण्यो।
एकेन्द्रिय दे आदि जन्तु को प्राण हराण्यो।।
ते सब जीव समूह सुनो मेरी यह अरजी।
भव-भव की अपराध क्षमा कीज्यो कर मरजी।।15।।

4. स्तवन कर्म

नमो ऋिषभ जिनदेव अजित जिन जीति कर्म को।
सम्भव भव दुख हरण करण अभिनन्द शर्म को।
सुमति सुमति दातार तार भव सिंधु पार कर।
पद्मप्रभ पद्माभ भानि भव भीति प्रीति धर।।16।।
श्री सुपार्श्व कृत पाश नाश भव जास शुद्ध कर।
श्री चन्द्रप्रभ चन्द्रकांति सम देह कान्ति धर।।
पुष्पदन्त दमि दोष कोष भवि पोष रोष हर।
शीतल शीतल करण हरण भव ताप दोष कर।।17।।
श्रेय रुप जिन श्रेय ध्येय नित सेय भव्य जन।
वासुपूज्य शत पूज्य वासवादिक भव भय हन।।
विमल विमल मति देन अन्तगत है अनन्त जिन।
धर्म शर्म शिव करण शांति जिन शांति विधायिन।।18।।
कुन्थु कुन्थु मुख जीव पाल अरनाथ जाल हर।
मल्लि मल्ल सम मोह मल्ल मारन प्रचार धर।।
मुनिसुव्रत व्रत करण नमत सुर संघहिं नमि जिन।
नमिनाथ जिन नेमि धर्म रथ माहिं ज्ञान धन।।19।।
पार्श्वनाथ जिन पार्श्व उपल सम मोक्ष रमापति।
वर्द्धमान जिन नमूं नमूं भव दुःख कर्म कृत।।
या विधि मैं जिन संघ रुप चउवीस संख्यधर।
स्तवूं नमूं हूं बार बार बंदूँ शिव सुखकर।।20।।

5. वन्दना कर्म

वंदूँ मैं जिनवीर धीर महावीर सु सन्मति।
वर्द्धमान अतिवीर वंदि हूँ मन वच तन कृत।।
त्रिशला तनुज महेश धीश विद्यापति वन्दूँ।
वंदौ नित प्रति कनक रुप तनु पाप निकन्दूँ।।21।।

सिद्धारथ नृप नन्द द्वन्द दुख दोष मिटावन।
दुरित दवानल ज्वलित ज्वाल जग जीव उधारन।।
कुण्डलपुर करि जन्म जगत जिय आनन्द कारन।
वर्ष बहत्तर आयु पाय सब ही दुःख टारन।।22।।

सप्त हस्त तनु तुंग भंग कृत जन्म-मरण भय।
बाल ब्रह्म मय ज्ञेय हेय आदेय ज्ञान मय।।
दे उपदेश उधारि तारि भव सिंधु जीव धन।
आप बसे शिव माँहि ताहि बंदों मन वच तन।।23।।

जाके वंदन थकी दोष दुःख दूर हि जावैं।
जाके वंदन थकी मुक्ति तिय सन्मुख आवैं।।
जाके वंदन थकी बंध होवे सुरगनके।
ऐसे वीर जिनेश बंदि हूँ क्रम युग तिनके।।24।।

सामायिक षट् कर्म माँहिं वंदन यह पंचम।
वंदों वीर जिनेन्द्र इन्द्र शत वंद्य वंद्य मम।।
जन्म मरण भय हरो करो अघ शांति शांतिमय।
मैं अघकोष सुपोष दोष को दोष विनाशय।।25।।

6. कायोत्सर्ग कर्म

कायोत्सर्ग विधान करूँ अन्तिम सुखदाई।
काय त्यजन मय होय काय सबको दुखदाई।।
पूरब दक्षिण नमूं दिशा पश्चिम उत्तर में।
जिन गृह वन्दन करूँ हरूँ भव पाप तिमिर मैं।।26।।
शिरोनति मैं करूँ नमूं मस्तक कर धरिकैं।
आवर्तादिक क्रिया करूँ मन वच मद हरिकैं।।
तीन लोक जिन भवन मांहि जिन हैं जु अकृत्रिम।
कृत्रिम हैं द्वय अर्द्ध द्वीप माहीं वन्दो जिम।।27।।
आठ कोड़ी परि छप्पन लाख जु सहस सत्याणूं।
च्यारि शतक पर असी एक जिन मंदिर जाणूं।।
व्यंतर ज्योतिष माहिं संख्य रहिते जिन मंदिर।
ते सब वंदन करूँ हरहु मम पाप संघ कर।।28।।
सामायिक सम नाहिं और कोउ वैर मिटायक।
सामायिक सम नाहिं और कोउ मैत्री दायक।।
श्रावक अणुव्रत आदि अन्त सप्तम गुणथानक।
यह आवश्यक किये होय निश्चय दुःख हानक।।29।।
जे भवि आतम काज करण उद्यम के धारी।
ते सब काज विहाय करो सामायिक सारी।।
राग दोष मद मोह क्रोध लोभादिक जे सब।
बुध 'महाचन्द्र' विलाय जाय तातैं कीज्यो अब।।30।।

।।इति सामायिक भाषा पाठ समाप्तं।।

✦ ✦ ✦

समाधि भावना
(श्री शिवराम जी)

दिन रात मेरे स्वामी, मैं भावना ये भाऊँ।
देहान्त के समय में, तुमको न भूल जाऊँ।।टेक।।
शत्रु अगर कोई हो, सन्तुष्ट उसको कर दूँ।
समता का भाव धरकर, सबसे क्षमा कराऊँ।।1।।
त्यागूँ आहार पानी, औषध विचार अवसर।
टूटे नियम न कोई, दृढ़ता हृदय में लाऊँ।।2।।
जागे नहीं कषायें, नहिं वेदना सतावे।
तुमसे ही लौ लगी हो, दुर्ध्यान को भगाऊँ।।3।।
आतम स्वरूप अथवा, आराधना विचारूँ।
अरहन्त सिद्ध साधु, रटना यही लगाऊँ।।4।।
धर्मात्मा निकट हो, चर्चा धरम सुनावे।
वो सावधान रक्खें, गाफिल न होने पाऊँ।।5।।
जीने की हो न वाँछा, मरने की हो न इच्छा।
परिवार मित्रजन से, मैं मोह को हटाऊँ।।6।।
भोगे जो भोग पहिले, उनका न होवे सुमरन।
मैं राज्य सम्पदा या, पद इन्द्र का न चाहूँ।।7।।
रत्नत्रय का पालन, हो अन्त में समाधि।
"शिवराम" प्रार्थना है, जीवन सफल बनाऊँ।।8।।

✦ ✦ ✦

समाधि मरण

(कवि सूरचन्द कृत)

वन्दों श्री अरिहंत परमगुरु, जो सबको सुखदाई,
इस जग में दुख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई।
अब मैं अरज करौं प्रभु तुमसे, कर समाधि उर माहीं,
अन्त समय में यह वर मांगू, सो दीजे जग-राई।।1।।
भव-भव में तनधार नया मैं, भव-भव शुभ संग पायो,
भव-भव में नृपरिद्धि लही मैं, मात-पिता सुत थायो।
भव-भव में तन पुरुषतनों धर, नारी हू तन लीनो,
भव-भव में मैं भयो नपुंसक, आतम गुण नहिं चीनो।।2।।
भव-भव में सुर पदवी पाई, ताके सुख अति भोगे,
भव-भव में गति नरकतनी धर, दुख पावे विधियोगे।
भव-भव में तिर्यंच योनिधर, पायो दुख अति भारी।
भव-भव में साधर्मी जन को, संग मिलो हितकारी।।3।।
भव-भव में जिनपूजन कीनी, दान सुपात्रहिं दीनो,
भव-भव में मैं समवसरण में, देखो जिनगुण भीनो।
ऐसी वस्तु मिली भव-भव में, सम्यक्गुण नहिं पायो,
ना समाधिजुत मरण कियो मैं, तातें जग भरमायो।।4।।
काल अनादि भयो जग भ्रमते, सदा कुमरणहिं कीनौं,
एक बार हू सम्यक्युत मैं, निज आतम नहिं चीनो।
जो निज पर को ज्ञान होय तो, मरण समय दुख कोई,
देह विनाशी मैं निज वासी, ज्योति स्वरूप सदाई।।5।।
विषय कषायन के वश होकर, देह आपनो जान्यो,

कर मिथ्या सरधान हिये बिच, आतम नाहिं पिछान्यो।
यों कलेश हियधार मरणकर, चारों गति भरमायो,
सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चरन ये, हिरदे में नहिं लायो।।6।।
अब या अरज करूँ प्रभु सुनिये, मरण समय यह माँगो,
रोगजनित पीड़ा मत होवे, अरु कषाय मत जागो।
ये मुझ मरण समय दुखदाता, इन हर साता कीजे,
जो समाधियुक्त मरण होय मुझ, अरु मिथ्यामद छीजे।।7।।
यह तन सात कुधातुमई है, देखत ही घिन आवे,
चर्म लपेटी ऊपर सोहे, भीतर विष्टा पावे।
अति दुर्गन्ध अपावनसों यह, मूरख प्रीति बढ़ावे,
देह विनासी जिय अविनाशी, नित्यस्वरूप कहावे।।8।।
यह तन जीर्ण कुटीसम आतम, यातें प्रीति न कीजे,
नूतन महल मिलै जब भाई, तब यामैं क्या छीजे।
मृत्यु होन से हानि कौन है, याको भय मत लावो,
समता से जो देह तजोगे, सो शुभतन तुम पावो।।9।।
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इस अवसर के माँही,
जीरन तन से देत नयो यह, या सम साहू नाहीं,
या सेती इस मृत्यु समय पर, उत्सव अति ही कीजे,
क्लेश भाव को त्याग सयाने, समता भाव धरीजे।।10।।
जो तुम पूरब पुण्य किये हैं, तिनको फल सुखदाई,
मृत्यु मित्र बिन कौन दिखावे, स्वर्ग सम्पदा भाई।
राग-द्वेष को छोड़ सयाने, सात व्यसन दुखदाई,
अन्त समय में समता धारो, पर भव पन्थ सहाई।।11।।
कर्म महादुठ बैरी मेरो, ता सेती दुख पावै,

तन पिंजर में बन्द कियो मोहि, यासों कौन छुड़ावै।
भूख-तृषा दुख आदि अनेकन, इस ही तन में गाढ़ै,
मृत्युराज अब आय दयाकर, तन पिंजर सों काढ़ै।।12।।
नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तन को पहराये,
गन्ध सुगन्धित अतर लगाये, षटरस असन कराये।
रात दिना मैं दास होयकर, सेवकरी तन केरी,
सो तन मेरे काम न आवे, भूल रह्यो निधि मेरी।।13।।
मृत्युराज को शरण पाय तन, नूतन ऐसी पाऊँ
जामें सम्यक् रतन तीन लहि, आठों कर्म खपाऊँ।
देखो तन सम और कृतघ्नी, नाहिं सु या जगमाहीं,
मृत्यु समय में ये ही परिजन, सबही हैं, दुखदाई।।14।।
यह सब मोह बढ़ावन हारे, जियको दुर्गति दाता,
इनसे ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुख साता।
मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, माँगो इच्छा जेती,
समता धरकर मृत्यु करो तो, पावो सम्पति तेती।।15।।
चौआराधन सहित प्राण तज, तो या पदवी पावो,
हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर, स्वर्ग मुक्ति में जावो।
मृत्यु कल्पद्रुम सम नहिं दाता, तीनों लोक मंझारै,
ताको पाय कलेश करो मत, जन्म जवाहर हारे।।16।।
इस तन में क्या राचैं जियरा, दिन-दिन जीरन हो है,
तेजकांति बल नित्य घटत है, या सम अपर सु को है।
पांचों इन्द्री शिथिल भई अब, वास शुद्ध नहिं आवै,
तापर भी ममता नहिं छोड़े, समता उर नहिं लावे।।7।।
मृत्युराज उपकारी जियको, तनसौं तोहि छुड़ावे,
नातर या तन बन्दीगृह में, पर्‌यो-पर्‌यो विललावे।

पुद्गल के परमाणु मिलकैं, पिण्ड रूप तन भासी,
याहै मूरत मैं अमूरती, ज्ञानज्योति गुणयासी।।18।।
रोगशोक आदिक जो वेदन, ते सब पुद्गल लारे,
मैं तो चेतन व्याधि बिना-नित, हैं सो भाव हमारे।
या तन सों इस क्षेत्रसम्बन्धी, कारन आन बन्यो है
खान-पान दे याको पोषो, अब समभाव ठन्यो है।।19।।
मिथ्यादर्शन आत्मज्ञान बिन, यह तन अपना जान्यो,
इन्द्री भोग गिने सुख मैंने, आपो नाहिं पिछान्यो।
तन विनशनतैं नाश जान निज, यह अयान दुखदाई,
कुटुम्ब आदि को अपनो जान्यो, भूल अनादी छाई।।20।।
अब निज भेद जथारथ समझो, मैं हूँ ज्योति स्वरूपी,
उपजै बिनसै सो यह पुद्गल, जान्यो याको रूपी।
इष्ट-अनिष्ट जेते सुख दुःख हैं, सो सब पुद्गल लागैं,
मैं जब अपनो रूप विचारो, तब वे सब दुख भागैं।।21।।
बिन समता तनऽनंत धरे मैं, तिनमें ये दुख पायो,
शस्त्रघात तैं अनन्त बार मर, नाना योनि भ्रमायो।
बार अनन्तहि अग्नि माहिं जर, मूवो सुमति न लायो,
सिंह व्याघ्र अहिऽनन्त बार मुझ, नाना दुःख दिखायो।।22।।
बिन समाधि ये दुःख लहे मैं, अब उर समता आई,
मृत्युराज को भय नहिं मानो, देवै तन सुखदाई।
यातैं जब लग मृत्यु न आवै, तब लग जप-तप कीजै,
जप-तप बिन इस जग के माँही, कोई भी नहिं सीजै।।23।।
स्वर्ग सम्पदा तपसों पावै, तपसों कर्म नसावैं,
तपही सों शिवकामिनि-पति है, यासों तप चित लावै।
अब मैं जानी समता बिन, मुझ कोऊ नाहिं सहाई,

मात-पिता सुत बान्धव तिरिया, ये सब हैं दुखदाई।।24।।
मृत्यु समय में मोह करें, ये तातैं आरत हो है,
आरत तै गति नीची पावै, यों लख मोह तज्यो है।
और परिग्रह जेते जग में, तिनसौं प्रीति न कीजे,
परभव में ये संग न चालैं, नाहक आरत कीजै।।25।।
जे जे वस्तु लखत हैं ते पर, तिनसौं नेह निवारो,
परगति में ये साथ न चालैं, ऐसो भाव विचारो।
जो पर भव में संग चलैं तुझ, तिनसे प्रीति सु कीजै,
पंच पाप तज समता धारो, दान चार विधि दीजै।।26।।
दश लक्षणमय धर्म धरो उर, अनुकम्पा उर लावो,
षोडशकारण नित्य चिंतवो, द्वादश भावना भावो।
चारों परवी प्रोषध कीजे, असन रात को त्यागो,
समता धर दुरभाव निवारो, संयम सों अनुरागो।।27।।
अन्तसमय में ये शुभ भावहि, होवैं आनि सहाई,
स्वर्ग मोक्षफल तोहि दिखावै, रिद्धि देहि अधिकाई।
खोटे भाव सकल जिय त्यागों, उर में समता लाके,
जासेती गति चार दूर कर, बसो मोक्षपुर जाके।।28।।
मन थिरता करके तुम चिंतो, चौ आराधन भाई,
वे ही तोकों सुख की दाता, और हितू कोउ नाहीं।
आगे बहु मुनिराज भये हैं, तिन गहि थिरता भारी,
बहु उपसर्ग सहै शुभ भावन, आराधन उर धारी।।29।।
तिनके कछु इक नाम कहूँ मैं, सुनो जिय चित्त लाके,
भावसहित अनुमोदे तासे, दुर्गति होय न ताके।
अरु समता निज उर में आवै, भाव अधीरज जावे,
यों निशदिन जो उन मुनिवर को, ध्यान हिये बिच लावै।।30।।

धन्य-धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी,
एक स्यालनी युग बच्चायुत, पाँव भख्यो दुखकारी।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्त धारी,
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु महोत्सव भारी।।31।।
धन्य-धन्य जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्री ने तन खायो,
तो भी श्रीमुनि नेक डिगे नहि, आतम सों हित लायो।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्युमहोत्सव भारी।।32।।
देखो गजमुनि के सिर ऊपर, विप्र अगिनि बहु बारी।
शीश जलै जिमि लकड़ी तनको, तो भी नाहि चिंगारी।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी,
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्युमहोत्सव भारी।।33।।
सनत्कुमार मुनि के तन में, कुष्ट वेदना व्यापी,
छिन्न-भिन्न तन तासों हूवो, तब चिन्त्यो गुण आपी।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी,
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्युमहोत्सव भारी।।34।।
श्रेणिकसुत गंगा में डूब्यो, तब जिन नाम चितारयो,
धर सल्लेखना परिग्रह छोड़यो, शुद्धभाव उर धारयो।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव भारी।।35।।
समन्तभद्र मुनिवर के तन में, क्षुधा-वेदना आई,
तो दुःख में मुनि नेक न डिगियो, चिन्त्यो निजगुण भाई।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी,
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।36।।
ललित घटादिक तीस दोय मुनि, कौशाम्बी तट जानो,

नदी में मुनि बहकर डूबे, सो दुख उन नहि मानो।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी,
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव भारी।।37।।
धर्मघोष मुनि चम्पानगरी, बाह्य ध्यान धर ठाढ़ो,
एक मासकी कर मर्यादा, तृषा दुःख सह गाढ़ो।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी,
ता तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव भारी।।38।।
श्रीदत्तमुनि के पूर्व जन्म को, बैरी देव सु आके,
विक्रिय कर दुख शीततनों, सो सह्यो साधु मनलाके।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी,
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव भारी।।39।।
वृषभसेन मुनि उष्ण शिला पर, ध्यान धरयो मनलाई,
सूर्य धाम अरु-उष्ण पवन की, वेदन सहि अधिकाई।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी,
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव भारी।।40।।
अभयघोष मुनि काकंदीपुर, महावेदना पाई,
बैरी चण्ड ने सब तन छेद्यो, दुख दीनों अधिकाई।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी,
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव भारी।।41।।
विद्युतचर ने बहु दुख पायो, तो भी धीर न त्यागी,
शुभभावना से प्राण तजे निज, धन्य और बड़भागी।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी,
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव भारी।।42।।
पुत्र चिलाती नामा मुनिको, बैरी ने तन घातो,
मोटे-मोटे कीट पड़े तन, तापर निज गुण रातो।

यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी,
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव भारी।।43।।
दण्डकनामा मुनि की देही, बाणन कर अति भेदी,
तापर नेक डिगे नहि वे मुनि, कर्म महारिपु छेदी।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी,
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव भारी।।44।।
अभिनन्दन मुनि आदि पांच सौ, घानि पेलि जु मारे,
तो भी श्रीमुनि समता धारी, पूरब कर्म विचारे।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी,
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव भारी।।45।।
चाणक मुनि गौधर के मांही, मन्द अगनि परजाल्यो,
श्रीगुरु उर समभाव धारके, अपनो रूप सम्हाल्यो।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी,
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव भारी।।46।।
सात शतक मुनिवर दुख पायो, हस्तिनापुर में जानो,
बलि ब्राह्मण कृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी,
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव भारी।।47।।
लोहमयी आभूषण गढ़के, ताते कर पहराये,
पाँचों पांडव मुनि के तन में, तो भी नांहि चिगाये।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी,
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव भारी।।48।।
और अनेक भये इस जग में, समता रस के स्वादी,
वे ही हमको हों सुखदाता, हर हैं टेव प्रमादी।

सम्यक्-दर्शन ज्ञान चरण तप, ये आराधन चारों,
ये ही मोकूँ सुख के दाता, इन्हें सदा उर धारों।।49।।
यों समाधि उर माही लावो, अपनो हित जो चाहो,
तज ममता अरू आठों मद को, जोति स्वरूपी ध्यावो।
जो कोई नित करत पयानो, ग्रामान्तर के काजे,
सो भी शकुन विचारै नीके, शुभ के कारण साजै।।50।।
मात-पितादिक सर्व कुटुम सो, नीको शकुन बनावे,
हलदी धनिया पुङ्गी अक्षत, दूब दही फल लावै।
एक ग्राम जाने के कारण, करैं शुभाशुभ सारे,
जब परगति को करत पयानो, तब नहिं सोचैं प्यारे।।51।।
सर्व कुटुम्ब जब रोवन लागै, तोहि रुलावै सारे,
ये अपशकुन करैं सुन तोकों, तू यों क्यों न विचारे।
अब परगति को चालत बिरियाँ, धर्मध्यान उर आनो,
चारों आराधन आराधो, मोहतनों दुख हानो।।52।।
होय निःशल्य तजो सब दुविधा, आतम राम सुध्यावो,
जब परिगति को करहु पयानो, परम तत्त्व उर लावो।
मोह जाल को काट पियारे, अपनो रूप विचारो,
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, यों निश्चय उर धारो।।53।।

दोहा

मृत्यु महोत्सव पाठकों, पढों सुनो बुधिवान।
सरधा धर नित सुख लहों, 'सूरचन्द्र' शिवथान।।
पंच उभय नव एक नभ, सम्वत् सो सुखदाय।
आश्विन श्यामा सप्तमी, कह्यो पाठ मन लाय।।

- इति श्री समाधिमरण भाषाय नमः -

✦ ✦ ✦

समाधिमरण
(पं. द्यानतरायजी)
(चाल योगीरासा)

गौतम स्वामी बन्दों नामी मरण समाधि भला है।
मैं कब पाऊँ निशदिन ध्याऊँ गाऊँ वचन कला है।
देव धर्म गुरु प्रीति महा दृढ़ सात व्यसन नहीं जाने।
त्यागि बाईस अभक्ष संयमी बारह व्रत नित ठानैं।।1।।
चक्की चूली उखरि बुहारी पानी त्रस ना विराधे।
बनिज करे पर द्रव्य हरे नहीं छहों करम इमि साधे।
पूजा शास्त्र गुरुन की सेवा संयम तप चहुं दानी।
पर उपकारी अल्प अहारी सामायिक विधि ज्ञानी।।2।।
जाप जपे तिहुं योग धरे दृढ़ तन की ममता टारे।
अन्त समय वैराग्य सम्हारे ध्यान समाधि विचारे।
आग लगे अरु नाव डूबे जब धर्म विघन तब आवे।
चार प्रकार आहार त्यागि के मन्त्र सु मन में ध्यावे।।3।।
रोग असाध्य जरा बहु देखे कारण और निहारे।
बात बड़ी है जो, बनि आवे भार भवन को डारे।
जो न बने तो घर में रह करि सबसों होय निराला।
मात पिता सुत तियको सौंपे निज परिग्रह अहि काला।।4।।
कुछ चैत्यालय कुछ श्रावक जन कुछ दुखिया धन देही।
क्षमा क्षमा सबही सो कहिके मन की शल्य हनेई।

शत्रुन सों मिल निज कर जोरे मैं बहु कीनी बुराई।
तुमसे प्रीतम को दुख दीने ते सब बकसो भाई।।5।।
धन धरती जो मुख सो माँगे सो सब दे सन्तोषे।
छहों काय के प्रानी ऊपर करुणा भाव विशेषे।
ऊँच नीच घर बैठ जगह इक कुछ भोजन कुछ पय ले।
दूधा धारी क्रम-क्रम तज के छाछ आहार गहेले।।6।।
छाछ त्याग के पानी राखे पानी तजि संथारा
भूमि माहि थिर आसन मांडे साधर्मी ढिग प्यारा।
जब तुम जानो यह न जपै है तब जिनवाणी पढ़िये
यो कहि मौन लियो संन्यासी पंच परम पद लहिये।।7।।
चारों आराधन मन में ध्यावें बारह भावन भावे।
दश लक्षण मुनि धर्म विचारे रत्नत्रय मन ल्यावे।
पैंतिस सोलह षटपन चारों दुइ इक वरन विचारे।
काया तेरी दुख की ढेरी ज्ञान मई तूं सारे।।8।।
अजर अमर निज गुणसों पूरे परमानन्द सुभावे।
आनन्द कन्द चिदानन्द साहब तीन जगतपति ध्यावे।
क्षुधा तृषादिक होई परीषह सहे भाव सम राखे।
अतिचार पाँचों सब त्यागे ज्ञान सुधारस चाखे।।9।।
हाड़ मांस सब सूख जाय जब धरम लीन तन त्यागे।
अद्भुत पुण्य उपाय सुरग में सेज उठे ज्यों जागे।
तहाँ ते आवे शिव पद पावे विलसे सुक्ख अनन्तो।
'द्यानत' यह गति होय हमारी जैन धरम जयवन्तो।।10।।

✦ ✦ ✦

अंतिम भावना

इतना तो करना स्वामी, जब प्राण तन से निकले
हो सिद्ध-सिद्ध मुख में, जब प्राण तन से निकले
सम्मेद शिखर का थल हो, तीर्थंकरों का स्थल हो
वहाँ ध्यान में अटल हो, जब प्राण तन से निकले
इतना तो करना.....

नेमिप्रभु का वट हो, सिर सोहता मुकुट हो,
वैराग्य अति प्रकट हो, जब प्राण तन से निकले।।
इतना तो करना.....

चंपापुरी का वन हो, जहाँ वासुपूज्य चरण हो,
उनके चरणों में मन हो, जब प्राण तन से निकले।।
इतना तो करना.....

कैलाश पावापुरी हो, गिरनार सोनागिर हो;
सबके चरण में सिर हो, जब प्राण तन से निकले।।
इतना तो करना.....

णमोकार मंत्र मुख हो, जिनवाणी का भी सुख हो,
फिर नेक भी न दुख हो, जब प्राण तन से निकले।।
इतना तो करना.....

जब प्राण कण्ठ आवे, कोई रोग न सतावे,
प्रभु दर्श को दिखावे, जब प्राण तन से निकले।।
इतना तो करना.....

सम्यक्त्व ज्ञान चारित्र, इन युक्त आत्मा हो,
मिथ्यात्व छूट जावे, जब प्राण तन से निकले।।
इतना तो करना.....
मेरा ज्ञान में ही मन हो, मेरी ध्यान में लगन हो,
हो मैल कुछ न दिल में, जब प्राण तन से निकले।।
इतना तो करना.....
समता सुधा को पीकर, छोडूँ मैं राग-द्वेष,
मन शील से रंगा हो, जब प्राण तन से निकले।।
इतना तो करना.....
इच्छा क्षुधा की होवे जो चाह उस घड़ी में,
उनको भी त्याग कर दूँ, जब प्राण तन से निकले।।
इतना तो करना.....
हे नाथ अर्ज करता, विनती पर ध्यान दीजै,
होवे समाधि पूरी, जब प्राण तन से निकले।।
इतना तो करना.....
जब प्राण तन से निकले, सोऽहं सोऽहं हो मुख में,
जब प्राण तन से निकले, अरहंत सिद्ध हो मन में।।
इतना तो करना.....
इतना तो करना स्वामी, जब प्राण तन से निकले।

✦ ✦ ✦

अनपढ़ भी तर जाते हैं और पढ़े-लिखे भी, समस्या तो उन लोगों की है जो ज्यादा पढ़-लिख जाते हैं और गुरु को ही पढ़ाना चाहते हैं।

समाधि भक्ति
(पू. आचार्य विभव सागर जी)

तेरी छत्रछाया भगवन् मेरे सिर पर हो....2
मेरा अंतिम मरण समाधि तेरे दर पर हो 2
तेरी छत्रछाया......

1. जिनवाणी रसपान करूँ मैं, जिनवर को ध्याऊँ-2
आर्यजनों की संगति पाऊँ, व्रत संयम चाहूँ-2
गुणीजनों के सद्गुण गाऊँ, जिनवर यह वर दो
मेरा......

2. परनिंदा न मुँह से निकले, मधुर वचन बोलूँ-2
हृदय तराजू पर हितकारी, संभाषण तोलूँ-2
आत्म तत्व की रहे भावना, भाव विमल भर दो
मेरा......

3. जिनशासन में प्रीति बढ़ाऊँ, मिथ्यापथ छोड़ूँ-2
निष्कलंक चैतन्य भावना, जिनमत से जोड़ूँ-2
जन्म-जन्म में जैनधर्म यह, मिले कृपा कर दो
मेरा......

4. मरण समय गुरु पादमूल हो, संत समूह रहे-2
जिनालयों में जिनवाणी की, गंगा नित्य बहे-2
भव-भव में सन्यास मरण हो, नाथ हाथ धर दो
मेरा......

5. बाल्यकाल से अब तक मैंने, जो सेवा की हो-2
देना चाहो प्रभो आप तो, बस इतना वर दो-2
श्वास-श्वास अंतिम श्वासों में, णमोकार भर दो
मेरा......

6. तेरे चरण कमल द्वय जिनवर, रहें हृदय मेरे-2
मेरा हृदय रहे सदा ही, चरणों में तेरे-2
पण्डित-पण्डित मरण हो मेरा, ऐसा अवसर दो
मेरा......

7. दुःख नाश हो कर्म नाश हो, बोधि लाभ वर दो-2
जिनगुण से प्रभु आप भरे हो, वह मुझमें भर दो-2
यही प्रार्थना यही भावना, पूर्ण आप कर दो
मेरा......

✦ ✦ ✦

हे शिष्य! आदर्श गुरु के पद चिन्हों, सिद्धान्तों, आदर्शों पर हर्षित, अनुशासित, विश्वासनीय बनकर चल, चाहे फूल मिलें या शूल।

आलोचना पाठ

(जौहरी लाल कृत)

।।दोहा।।

बन्दो पांचों परम गुरु, चौबीसों जिनराज।
करूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धि करन के काज।।1।।

।। सखी छन्द (14 मात्रा)।।

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अतिभारी।
तिनकी अब निर्वृति काजा, तुम शरन लही जिनराजा।।2।।
इक बे ते चउ इन्द्री वा, मन रहित सहित जे जीवा।
तिनकी नहिं करुणाधारी, निरदई है घात विचारी।।3।।
समरंभ समारंभ आरम्भ, मन, वच, तन कीने प्रारम्भ।
कृत कारित मोदन करिकैं, क्रोधादि चतुष्टय धरिकैं।।4।।
शत आठजु इन भेदन ते, अघ कीने पर छेदन ते।
तिनकी कहुँ कोलो कहानी, तुम जानत केवल ज्ञानी।।5।।
विपरीत एकान्त विनय के, संशय अज्ञान कुनय के।
वश होय घोर अघ कीने, वच तै नहिं जाय कहीने।।6।।
कुगुरुन की सेवा कीनी, केवल अदयाकर भीनी।
या विधि मिथ्यात भ्रमायो, चहुँ गतिमधि दोष उपायो।।7।।
हिंसा पुनि झूँठ जु चोरी, परवनिता सों दृग जोरी।
आरम्भ-परिग्रह भीनो, पन पाप जु या विधि कीनो।।8।।
सपरस रसना घ्रानन को, चखु कान विषय सेवन को।
बहु करम किये मनमाने, कछु न्याय-अन्याय न जाने।।9।।
फल पंच उदंबर खाये, मधु मांस मद्य चित चाहे।
नहिं अष्ट मूल गुण धारे, सेये कुविसन दुःख कारे।।10।।

दुइबीस अभख जिन गाये, सो भी निशदिन भुंजाये।
कछु भेदा-भेद न पायो, ज्यौं त्यौं कर उदर भरायो।।11।।
अनंतानु जु बँधी जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो।
संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सब भेद जु षोड़श मुनिये।।12।।
परिहास अरति रति शोग, भय ग्लानि तिवेद संयोग।
पनबीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम।।13।।
निद्रा वश शयन कराई, सुपने मधि दोष लगाई।
फिर जागि विषय वन धायो, नाना विधि विष-फल खायो।।14।।
आहार विहार निहारा, इनमें नहिं जतन विचारा।
बिन देखी धरी उठाई, बिन शोधी वस्तु जो खाई।।15।।
तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकल्प उपजायो।
कछु सुधि बुधि नाहिं रही है, मिथ्या मति छाय गई है।।16।।
मरजादा तुम ढिंग लीनी, ताहू में दोष जु कीनी।
भिन-भिन अब कैसें कहिये, तुम ज्ञान विषै सब पइये।।17।।
हा हा मैं दुष्ट अपराधी, त्रस जीवन राशी विराधी।
थावर की जतन न कीनी, उर में करुणा नहिं लीनी।।18।।
पृथ्वी बहु खोद कराई, महलादिक जागां चिनाई।
पुनि बिन गाल्यो जल ढोल्यो, पंखा तै पवन बिलोल्यो।।19।।
हा हा! मैं अदयाचारी, बहु हरित काय जु विदारी।
ता मधि जीवन के खंदा, हम खाये धरि आनंदा।।20।।
हा हा! परमाद बसाई, बिन देखे अगनि जलाई।
ता मध्य जीव जे आये, ते हू परलोक सिधाये।।21।।
बीध्यो अन राति पिसायो, ईंधन बिन शोधि जलायो।
झाड़ू ले जांगा बुहारी, चींटी आदिक जीव बिदारी।।22।।
जल छानि जिवानी कीनी, सोहू पुनि डारि जु दीनी।
नहिं जल थानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई।।23।।

जल-मल मोरिन गिरवायो, कृमिकुल बहुघात करायो।
नदियन बीच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये।।24।।
अन्नादिक शोध कराई, ता मैं जु जीव निसराई।
तिनका नहिं जतन कराया, गलियारे धूप डराया।।25।।
पुनि द्रव्य कमावन काजै, बहु आरम्भ हिंसा साजै।
किये तिसनावश अघ भारी, करुणा नहिं रंच विचारी।।26।।
इत्यादिक पाप अनन्ता, हम कीने श्री भगवन्ता।
संतति चिरकाल उपाई, वाणी ते कहिये न जाई।।27।।
ताको जु उदय अब आयो, नाना विधि मोहि सतायो।
फलभुंजत जिय दुख पावै, वचतैं कैसे करि गावै।।28।।
तुम जानत केवल ज्ञानी, दुख दूर करो शिवथानी।
हम तो तुम शरन लही है, जिन तारन विरद सही है।।29।।
इक गाँव पति जो होवे, सो भी दुखिया दुख खोवै।
तुम तीन भुवन के स्वामी, दुख मेटो अन्तरजामी।।30।।
द्रोपदि को चीर बढ़ायो, सीता प्रति कमल रचायो।
अंजन से किये अकामी, दुख मेटो अन्तरजामी।।31।।
मेरे अवगुण न चितारो, प्रभु अपनो विरद निहारो।
सब दोष रहित करि स्वामी, दुख मेटो अन्तरजामी।।32।।
इन्द्रादिक पदवी नहिं चाहूँ, विषयन में नाहीं लुभाऊँ।
रागादिक दोष हरीजे, परमातम निज पद दीजे।।33।।

दोह

दोष रहित जिनदेवजी, निज पद दीज्यो मोय।
सब जीवन के सुख बढ़ै आनन्द मंगल होय।।34।।
अनुभव माणिक पारखी, ‘‘जौहरि’’ आप जिनन्द।
ये ही वर मोहि दीजिये, चरण-शरण आनन्द।।35।।

।। इति आलोचना पाठ।।

स्तुति

पं. भूधरदास कृत

अहो! जगतगुरु, देव सुनियो अरज हमारी।
तुम प्रभु दीनदयाल, मैं दुखिया संसारी।।1।।
इस भव-वन के माहि, काल अनादि गमायो।
भ्रमत चहुँगति माँहि, सुख नहिं दुख बहु पायो।।2।।
कर्म महारिपु जोर, एक न काम करैं जी।
मन मान्या दुख देहिं, काहूसों नाहिं डरैं जी।।3।।
कबहुँ इतर निगोद, कबहुँ नर्क दिखावे।
सुर-नर-पशु-गति माँहिं, बहुविधि नाच नचावें।।4।।
प्रभु! इनके परसंग, भव-भव माँहि बुरे जी।
जे दुख देखे देव! तुमसों नाहिं दूरे जी।।5।।
एक जनम की बात, कहि न सकों सुनि स्वामी।
तुम अनन्त परजाय, जानत अंतर्यामी।।6।।
मैं तो एक अनाथ, ये मिलि दुष्ट घनेरे।
कियो बहुत बेहाल, सुनियो साहब मेरे।।7।।
ज्ञान महानिधि लूटि, रंक निबल करि डारयो।
इन ही तुम मुझ माहिं, हे जिन! अन्तर पारयौ।।8।।
पाप पुण्य मिल दोइ, पायनि बेडी डारी।
तन कारागृह माँहि, मोहि दिये दुख भारी।।9।।
इनको नेक बिगार, मैं कछु नाहिं कियो जी।
बिन कारन जगवंद्य! बहुविधि बैर लियो जी।।10।।
अब आयो तुम पास, सुनि कर सुजस तिहारो।
नीति निपुन महाराज, कीजे न्याय हमारो।।11।।
दुष्टन देहु निकार, साधुन को रख लीजे।
विनवै भूधरदास हे प्रभु! ढील न कीजै।।12।।

पार्श्वनाथ स्तोत्र
(पं. द्यानत राम जी)
'भुजंगप्रयात छन्द'

नरेंद्रं फणीद्रं सुरेन्द्रं अधीशं। शतेंद्रं सु पूजैं भजैं नाय शीशं।।
मुनीद्रं गणेद्रं नमों जोड़ि हाथं। नमो देव देवं सदा पार्श्वनाथं।।1।।
गजेंद्रं मृगेद्रं गह्यो तू छुड़ावे। महा आगतें नागतें तू बचावै।।
महावीर तें युद्ध में तू जितावै। महा रोग तें बंधते तू छुड़ावे।।2।।
दुखीदुःख हर्त्ता सुखी सुखकर्त्ता। सदा सेवकों को महानंद भर्त्ता।।
हरे यक्ष राक्षस भूतं पिशाचं। विषं डाकिनी विघ्न के भय अवाचं।।3।।
दरिद्रीन को द्रव्य के दान दीने। अपुत्रीन को तू भले पुत्र कीने।।
महासंकटों से निकारे विधाता। सवै संपदा सर्व को देहि दाता।।4।।
महाचोर को वज्र को भय निवारै। महापौन के पुँजतैं तू उवारै।।
महाक्रोध की अग्नि को मेघधारा। महालोभ शैलेश को बज्रभारा।।5।।
महामोह अंधेर को ज्ञान भानुं। महाकर्मकांतार को दौ प्रधानं।।
किये नाग-नागिन अधोलोक स्वामी। हरयो मान तूदैत्य को हो अकामी।।6।।
तुही कल्पवृक्षं तुही कामधेनुं। तुही दिव्य चिंतामणि नाग एनं।।
पशु नर्क के दुःखतैं तू छुड़ावे। महास्वर्गतैं मुक्ति में तू वसावै।।7।।
करै लोह को हेमपाषाण नामी। रटै नाम सो क्यों न हो मोक्षगामी।।
करै सेव ताकी करैं देव सेवा। सुनै वैन सोही लहै ज्ञान मेवा।।8।।
जपै जाप ताको नहीं पाप लागै। धरै ध्यान ताकै सबै दोष भागै।।
बिना तोहि जाने धरे भव घनेरे। तुम्हारी कृपातैं सरैं काज मेरे।।9।।

दोहा-

गणधर इंद्र न कर सकैं, तुम विनती भगवान।
'द्यानत' प्रीति निहारिकैं, कीजै आप समान।।1।।

श्रावक प्रतिक्रमण
(मुनि प्रज्ञा सागर जी)

हे जिनेन्द्र! हे देवाधिदेव! हे वीतरागी! सर्वज्ञ! हितोपदेशी! हे अरहन्त! प्रभु अब मैं प्रतिक्रमण करना चाहता हूँ, पापों के प्रक्षालन के लिए, पापों से मुक्त होने के लिए, आत्म उत्थान के लिए, आत्म जागरण के लिए अब मैं प्रतिक्रमण करूँगा, (इस प्रकार प्रतिज्ञा करके एक आसन पर बैठकर प्रतिक्रमण प्रारम्भ करें,)

हे जिनेन्द्र! हे परमेश्वर! हे परमपिता! हे परमात्मा! मैं पापी हूँ, पामर हूँ, दुष्ट हूँ, दुराचारी हूँ, मायावी हूँ, लोभी हूँ, मूढ़ हूँ, सर्व दुर्गुणों से सम्पन्न हूँ, मैंने मन, वचन, काय की दुष्टता से न जाने कितने पाप किये, कितने अपराध किये, ओह-ओह, आप तो केवल ज्ञानी हैं, घट-घट के अन्तर्यामी हैं, यदि मैं आपसे अपने पापों को छुपाना चाहूँ तो क्या छुपा सकता हूँ, नहीं, नहीं...., कदापि नहीं, आपसे अपने पापों को छुपाना तो वैसे ही है जैसे कपास के ढ़ेर में अंगार को छुपाना, हे प्रभु! जन्म-जन्मांतरों से संग्रहित इन पापों के प्रक्षालन के लिए मैं प्रतिक्रमण करता हूँ, आलोचना करता हूँ, स्वयं की निन्दा और गर्हा करता हूँ,

मैं सभी जीवों को क्षमा करता हूँ, सभी जीव मुझे क्षमा प्रदान करें, सभी जीवों से मेरी मित्रता है किसी भी जीव से मेरी शत्रुता नहीं है, मैं बार-बार सभी जीवों से हाथ जोड़कर क्षमा चाहता हूँ और सभी जीवों को हृदय से क्षमा करता हूँ। हे भगवान! यदि मेरे द्वारा राग और द्वेष से, हर्ष और विषाद से, भय और जुगुप्सा से, रति और अरति से कोई पाप हुआ हो, तो मेरे वे सभी पाप कर्म मिथ्या होवे, हाय-हाय, मैंने दुष्ट कर्म किये,

हाय-हाय, मैंने पाप कर्मों का हमेशा चिन्तवन किया, हाय-हाय, मैंने दुष्ट मर्म भेदक कुत्सित वचन कहे, इस प्रकार मन, वचन, काय की दुष्टता से न जाने कितने पाप किये, कितने अपराध किये।

हे प्रभु! हे विभु! यदि मुझ छद्मस्थ के द्वारा कषाय के वशीभूत होकर प्रमाद से, अज्ञान से, उठने से, बैठने से, चलने से, बोलने से, खाने से, खांसने से, छीकने से, जम्हाई लेने से, श्वासोच्छवास से, आंगोपांग के हलन-चलन से, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, पृथ्वी कायिक, जल कायिक, अग्नि कायिक, वायुकायिक, वनस्पति कायिक और त्रसकायिक जीवों को मैंने कष्ट दिया हो, अन्य से दिलाया हो, देने वालों को अच्छा कहा हो तो वे मेरे सारे दुष्कर्म मिथ्या होवें।

हे प्रभु! हे विभु! यदि मेरे द्वारा ग्रहण किये हुये व्रतों, में दोष लगे हों, जिनेन्द्र भगवान की अवहेलना हुई हो, सम्यक्दर्शन की असादना हुई हो, रात्रि भोजन त्याग व्रत में दूषण लगा हो, मैंने पानी छानकर ना पिया हो, जाने-अनजाने जीवों की हिंसा की हो, हंसी-हंसी में झूठ बोला हो, जिसके कारण किसी जीव को पीड़ा हुई हो, किसी की गिरी हुई, भूली हुई, रखी हुई वस्तुओं की चोरी की हो, दूसरों की माता-बहिनों को बुरी दृष्टि से देखा हो, पर पुरुष की ओर बुरी निगाह से निहारा हो, जरूरत से ज्यादा वस्तुओं को संग्रहित किया हो या करने की इच्छा की हो तो मेरे वे सारे पाप कर्म मिथ्या होवें, हे परमात्मा! मैं अपने पापों का प्रायश्चित्त करता हूँ, अपने अपराधों को स्वीकार करता हूँ, अपने पापों से मुक्त होने के लिए पंच परमेष्ठी भगवान के श्री चरणों में बारम्बार नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो.... नौ बार णमोकार।

(इसके बाद कुछ क्षणों तक ऊँकार की ध्वनि के माध्यम से मन वीणा को झंकृत करें।)

ऊँ णमो अरिहंताणं,
ऊँ णमो सिद्धाणं,
ऊँ णमो आयरियाणं,
ऊँ णमो उवज्झायाणं,
ऊँ णमो लोए सव्व साहूणं,

णमो अरिहंताणं

अरिहन्तों को नमस्कार हो, कैसे हैं वे अरहन्त? क्या है उनका स्वरूप? जो पंच कल्याणकों से सहित हैं, चौंतीस अतिशयों से युक्त हैं।

अनन्त चतुष्टय के धनी हैं, जो वीतरागी-सर्वज्ञ-हितोपदेशी-रत्नत्रय से मण्डित-घातिया चतुष्क नाशक हैं, ज्ञानी-भेदज्ञानी-परमज्ञानी- लोकोद्धारक भी तो आप ही हैं, कहाँ तक कहूँ आपकी महिमा अब तो कही नहीं जाती, अरे, अरे, मैं तो क्या, स्वर्ग के देव भी, साक्षात् बृहस्पति भी आपकी सम्पूर्ण महिमा को न गा सका।

हे प्रभु! हे विभु! राजा-महाराज-अधिराजा-नारायण-प्रतिनारायण-बलभद्र-चक्रवर्ती-इन्द्र-ऋषि-मुनि-यति-अनगार से वन्दित लोकाधिनायक वृषभादि महावीर पर्यन्त समस्त भूत-भविष्यत्-वर्तमान काल सम्बन्धित अरिहन्तों को बारम्बार नमस्कार हो, नमस्कार हो.....

(नौ बार णमोकार मंत्र)

णमो सिद्धाणं

सिद्धों को नमस्कार हो, कैसे हैं वे सिद्ध? क्या है उनका

स्वरूप? जो अनन्त स्वरूपी हैं- अतीन्द्रिय हैं, अनुपम हैं, आत्मरथ हैं, अनबद्ध हैं, तिष्ठित हैं, कृत-कृत्य हैं, सिद्धि साध्य हैं, लोकाग्रस्थित हैं, जो तप से सिद्ध हैं, नय से सिद्ध हैं, संयम से सिद्ध हैं, चारित्र से सिद्ध हैं, ज्ञान से सिद्ध हैं, दर्शन से सिद्ध हैं, ऐसे सिद्धालय में स्थित अनंतानंत सिद्ध परमेष्ठियों को सिर झुकाकर बारम्बार नमस्कार नमस्कार हो.

(नौ बार णमोकार।)

णमो आयरियाणं

आचार्यों को नमस्कार हो, कैसे हैं वे आचार्य? क्या है उनका स्वरूप? जो द्वादशांगमय सूत्र रूपी समुद्र के पारगामी, ज्ञान-ध्यान और तप में लवलीन, बाह्याभ्यन्तर परिग्रह से रहित, जितेन्द्रिय, शुद्ध चारित्र व छत्तीस गुणों से युक्त, पंचाचार को स्वयं पालने वाले व शिष्यों से उनका आचरण कराने वाले, स्वसमय और परसमय में पारंगत, मेरु के समान निश्चल, पृथ्वी के समान सहनशील, समुद्र के समान गम्भीर, निर्मल बुद्धि वाले, निर्दोष षट् आवश्यकों को पालने वाले, सिंह के समान पराक्रमी, गज के समान स्वाभिमानी, आकाश के समान निर्लेप, सौम्यमूर्ति, देश-कुल-जाति से शुद्ध, संघ में शिक्षा-दीक्षा व प्रायश्चित्त देने में कुशल ऐसे धर्म आचार्यों के चरणों में बारम्बार नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो.....

(नौ बार णमोकार।)

णमो उवज्झायाणं

उपाध्यायों को नमस्कार हो, कैसे हैं वे उपाध्याय? क्या है उनका स्वरूप? जो पच्चीस मूलगुणों से युक्त हैं, मोक्ष मार्ग में स्थित हैं, मोक्ष के इच्छुक मुनीश्वरों को उपदेश देने में प्रवीण,

व्रतों की रक्षा करने में तत्पर, द्वादशांगरूपी समुद्र में अवगाहन करने वाले, सम्पूर्ण शास्त्रों के पाठी, ज्ञान दाता परम आराध्य उपाध्याय परमेष्ठी के चरणों में बारम्बार नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो....

(नौ बार णमोकार।)

णमो लोए सव्व साहूणं

लोक के समस्त समकित् साधुओं को नमस्कार हो, कैसे हैं वे साधु? क्या है उनका स्वरूप? जो विषय आशाओं से रहित, आरम्भ और परिग्रह से दूर, ज्ञान-ध्यान में लीन, व्रत-तप व ध्यान रूपी अग्नि में कर्मों को नाश करने में प्रवीण, षट् आवश्यक कर्मों में सावधान, शुद्ध आत्मा के स्वरूप की साधना करने वाले, मन को जीतने वाले, शील रूपी कवच को धारण करने वाले गुणरूपी कवच को धारण करने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी, चन्द्रमा के समान शीतल, आकाश के समान निर्लेप, परिषह और उपसर्गों को सहन करने वाले, अट्ठाईस मूलगुणों का निरतिचार पालन करने वाले, मोक्ष के साधक, पूज्य मुनीश्वरों के चरणों में मनसा-वाचा-कर्मणा बारम्बार नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो....

(नौ बार णमोकार।)

(अब आत्मचिन्तन करते हुए आत्म आलोचना करें)

प्रिय आत्मन! अनादि काल से इस संसार में रहते हुए तुमने विगत में क्या किया, कितने-कितने जन्मों को धारण किया, कैसे-कैसे कष्टों को सहन किया? कौन-कौन से कुकर्म किये? सोचो....

... सोचो क्या कभी इन कष्टों से मुक्त होने की कोशिश की? नहीं...., क्या कभी अन्धकार से प्रकाश की ओर जाने की

कोशिश की? नहीं.... क्या कभी शरीर के देवालय में कैद परमात्मा को मुक्त कराना चाहा? नहीं.. नहीं.. कदापि नहीं.., तो फिर कब तक भटकते रहोगे इस संसार के अन्धकार में? कब तक सहते रहोगे इस संसार की पीड़ाएँ? उठो चलो और कर लो अपने पापों को स्वीकार, क्योंकि पापों की स्वीकृति ही प्रतिक्रमण है और प्रतिक्रमण से ही कटता है संसार।

बस-बस जरूरत है, पापों की स्वीकृति, इसलिए करलो स्वीकार और सुना दो परमात्मा को अपनी व्यथायें - कथायें।

हे पतित पावन! हे पतितोद्धारक! मैंने अनन्तकाल तक निगोद की पर्याय में जन्म-मरण के दुःखों को सहन किया वहाँ की पीड़ा को तड़प-तड़प कर सहन किया तत्पश्चात् मैंने पृथ्वीकायिक की पर्याय में जन्म लेकर हजारों वर्षों तक दुःखों का सामना किया, कई वर्षों के बाद मैंने जलकायिक की पर्याय धारण की, इस योनि में भी मुझे विविध प्रकार की पीड़ाओं को सहन करना पड़ा, वहाँ के कष्टों को उठाना पड़ा, क्रमशः सीढ़ी दर सीढ़ी मैं आगे बढ़ता गया, इसी क्रम से मुझे अग्निकायिक की पर्याय मिली, जिस पर्याय में मैं स्वयं जलता रहा और दूसरों को जलाता रहा, सतत जलता रहा, तत्पश्चात् स्थावर काय की अन्तिम पर्याय के रूप में मैंने वनस्पतिकायिक का दामन सम्हाला, मैंने वनस्पति कायिक में जन्म लिया, जहाँ पर मुझे सर्दी-गर्मी और वर्षा की पीड़ाओं को एक ही स्थान पर खड़े-खड़े सहना पड़ा, हे प्रभु! न जाने इस स्थावर काय की पर्याय में मैंने कितने-कितने कष्ट सहे, कैसे-कैसे दुःखों को सहन किया।

हे नाथ! इस अनाथ ने स्थावर काय से मुक्त होने के बाद त्रसकाय की पर्याय को प्राप्त किया, जहाँ पर मैंने द्वीन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय की काया को धारण कर अनेकानेक कष्ट

उठाये, जिन कष्टों के भार से पीड़ित हो, मेरी आत्मा सदा दुःखों को सहती रही।

हे देवाधिदेव! पापों से पीड़ित होते हुए मैंने फिर असैनी पंचेन्द्रिय तिर्यंच की पर्याय को ग्रहण किया, जहाँ पर इन्द्रियाँ तो मिली, पर मन न मिला, जिसके बिना मैं हेय-उपादेय का ज्ञान न कर सका, इसी कारण से मुझे इस पर्याय में सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की पहचान न हो सकी, और मैं संसार में भटकता रहा, 'जीवो-जीवस्य भोजनं' का सूत्र रटता रहा, फिर भी इस पर्याय से मुक्त होने के बाद भी मैंने मनन न किया, नमन न किया, बस अपने से शक्तिशाली सिंहादिक क्रूर प्राणियों का शिकार हुआ, कभी लोगों के द्वारा छेदा गया-भेदा गया-अनन्त शक्तिशाली होने के बावजूद भी मैं अपनी शक्ति से विस्मृत रहा, जिसके कारण मुझे सदियों-सदियों तक परतंत्र रहना पड़ा, इसी तरह से मैंने तिर्यंच की पर्याय में नाना प्रकार के कष्टों को सहन किया।

हे परमात्मा! इस तिर्यंच की पर्याय से छूटने के साथ ही मैंने दुःखों के सागर नरक की पर्याय को प्राप्त किया। जहाँ की भूमि का स्पर्श ही सहस्त्रों बिच्छुओं के डंक मारने की तरह दुःखदायी हे। जहाँ की वैतरणी नदी रक्त और पीप से परिपूरित दुर्गन्धित है। जहाँ के वृक्षों की छाया भी अत्यन्त दुःखद है। जहाँ पर प्यास बुझाने के लिए पानी की एक बूँद भी नहीं है, और न भूख मिटाने के लिए अनाज का एक कण। यदि खाने के नाम पर कुछ मिलता है तो वह है मार। यदि खाने के लिए वहाँ मुझे कुछ मिलता है तो मैं अकेला ही तीनों लोकों की सम्पूर्ण खाद्य पदार्थों को हजम कर जाता, सम्पूर्ण पेय पदार्थों को एक घूंट में ही पी जाता। क्षुधा और तृषा की शीत और उष्ण की असह्य पीड़ाओं को न चाहते हुए भी मैंने वहाँ सहन किया है।

हे परम पिता! हे परमात्मा! मैंने न जाने किस पुण्य कर्म

के उदय से उस अत्यन्त दुःखदायी नरक से निकल कर मनुष्य की पर्याय को प्राप्त किया, जहाँ पर मुझे प्रारम्भ से ही नौ माह तक गर्भ की पीड़ाओं को सहन करना पड़ा, जन्म समय की पीड़ाओं का वर्णन करना तो मेरे द्वारा शक्य ही नहीं है, इतनी पीड़ाओं को सहने के बाद भी मेरी पीड़ाओं का अन्त न हो सका, सच है परमात्मा, मैंने अपनी बाल्यावस्था यूं ही अज्ञानता में व्यतीत कर दी और धीरे-धीरे चलते हुए यौवन की दहलीज पर पैर रखा, यौवन, आह! यौवन, यौवन आते ही मैं भोगाकाँक्षा की पूर्ति के लिए उन्मत्त हो दौड़ पड़ा और अपने हीरे से बहुमूल्य यौवन को काम-वासना की भट्टी में झोंक दिया, अपने यौवन को नष्ट कर दिया। धीरे-धीरे काल-कराल को साथ ले जीवन के द्वार पर बुढ़ापे ने दस्तक दी, बुढ़ापा, हाय-हाय, बुढ़ापा, नहीं, नहीं ये बुढ़ापा नहीं, बुलावा है, मौत का निमन्त्रण है, मेरे गमन का और मौत के आगमन का समय है। बस, बस मुझे अब मेरा काल दिखाई दे रहा है, हे परमात्मा! ये बुढ़ापा अत्यन्त दुःखदायी है, पीड़ाओं का घर है, बीमारियों का आलय है, हे प्रभु! ऐसा दुःखदायी बुढ़ापा किसी को न देना, क्योंकि मैंने अपनी इन चर्म चक्षुओं से बुढ़ापे के दुःखों को देखा है, इस प्रकार के बचपन, यौवन और वृद्धापन इन तीनों अवस्थाओं में मैंने अनेक कष्ट उठाये, इस संसार में सुखाभास की मृग मारीचिका में भटक कर मैंने अपने दुर्लभ मनुष्य जन्म को यूँ ही व्यर्थ गवाँ डाला।

हे प्रभु! मैंने मनुष्य जन्म में की हुई अकाम निर्जरा के बावजूद देव गति में जन्म लिया, जहाँ पर कर्मों के विपाकानुसार ज्योतिष्क, व्यन्तर और भवनवासी देवों की पर्याय धारण की, जहाँ पर मिथ्यात्व से ग्रसित होने के कारण मैंने वीतरागी अरिहन्त देव की वन्दना नहीं की और की भी तो कुल देवता मानकर, मैं वहां के भोगों में, इन्द्रिय सुखों में आपाद कण्ठ डूबा

रहा, विषयों की अग्नि में जलता रहा और मेरा काल भी मुझे भोगों की मदिरा पिला-पिलाकर छलता रहा और जब मेरे मरण का काल करीब आया तो मैं रोया-चीखा-चिल्लाया, परन्तु काल के गाल से मुझे कोई बचा न सका, मैंने इस भवनत्रिक की पर्याय में भोगों में आसक्त हो, न जाने कितने पाप किये, जिनके कारण मैंने तीव्र कर्मों का आस्रव किया और यदि तीव्र पुण्योदय से स्वर्ग में विमानवासी देव बना तो सम्यगदर्शन के बिना दुःखी रहा, अपने से श्रेष्ठ सम्यक्दृष्टि देवों की विभूति, ऋद्धि-सिद्धियों को देखकर मानसिक वेदना से प्रतिपल घायल रहा और पूर्व में किये हुए निदानबंध के कारण मैं मरकर पुनः एकेन्द्रिय वृक्षादि की पर्याय में उत्पन्न हुआ, इस तरह से मैंने कई कल्प काल तक संसार में पंच परावर्तन करते हुए अनेकानेक दुःख उठाये।

हे प्रभु! हे विभु! हे करुणा के सागर! बस-बस अब मैंने देख लिए इस चतुर्गति संसार के दुःख, सुना दी मैंने अपनी काली-कलुषित कहानी, हे प्रभु! अब मुझसे ये पीड़ाएं सही नहीं जाती, अब मुझसे ये पापों का नर्तन देखा नहीं जाता, हे प्रभु! रक्षा करो, रक्षा करो, अब मैं आपकी शरण में हूँ नाथ, मैं मानता हूँ, मैंने पाप किये, मैंने अपराध किये, मैंने स्वयं की बजाय दूसरों की आलोचना की, आपकी अवहेलना की, व्रत-नियम-संयम को जड़ की क्रिया माना, पुण्य को संसार का कारण कहकर उसे हेय बताया और अहर्निश पाप क्रियाओं में ही रत रहा, मैं ऐसा मानकर अपने संसार को बढ़ाता रहा, पर अब मैं इस दुःखमयी संसार से मुक्त होना चाहता हूँ, आपकी तरह शुद्ध-बुद्ध बनना चाहता हूँ, इसलिये अब अशरण संसार की शरण छोड़कर आपकी शरण में आया हूँ। हे प्रभु! मुझे अपनी मौन करुणा का सहारा दो नाथ, मुझे मुक्ति की युक्ति का इशारा दो ईश्वर, मुझे इसके अलावा और कुछ नहीं चाहिए, मैंने आपको पा लिया यानि सब

कुछ पा लिया प्रभु।

हे दया के सागर! ये तन-मन यौवन और जीवन की हर एक आती-जाती श्वांस आपको समर्पित है, मेरे शरीर का रोम-रोम आपके गुणानुवाद के लिए आतुर, पुलकित है, प्रफुल्लित है, हे करुणानिधान! अब तो करुणा करो, इस दुखिया के दुःखों को दूर करो नाथ, इतने कठोर न बनो प्रभु, थोड़े नरमाओ मेरे स्वामी, नहीं तो, मैं कैसे मानूँगा कि भक्त की भक्ति से पाषाण पिघल जाता है, आप पाषाण तो नहीं हैं, आप तो हमारे इष्ट आराध्य परमदेव परमात्मा हैं, बस अब मेरी आत्मा को परमात्मा बना दो नाथ, नहीं तो मैं कैसे मानूगाँ कि आप करुणा सागर हैं, करुणा निधान हैं, करुणाकार हैं, मुझ पर करुणा करो करुणाकर, मुझ पर दया करो दया के सागर, हम पतितों का उद्धार करो, हे पतितोद्धारक! हमें इस संसार से पार करो, परमात्मा हमें कर्मों के बन्धन से मुक्त करो, हे दीन बन्धु! इस तरह अपनी निन्दा, गर्हा और आत्मआलोचना करते हुये परम आराध्य देव-शास्त्र-गुरू के श्री चरणों में सम्यक्रूपेण नमस्कार हो-नमस्कार हो- नमस्कार हो....

(नौ बार णमोकार।)

(अब प्रतिक्रमण में लगे हुए दोषों की क्षमा याचना करो,)

हे प्रभु! हे विभु! यदि मुझ छद्मस्थ के द्वारा इस प्रतिक्रमण में, अज्ञानतावश, प्रमाद से, प्रतिक्रमण के उच्चारण से, मन की चंचलता से, इधर-उधर देखने से, शरीर के हलन-चलन से, श्वासोच्छवास से, छींकने से, खाँसने से, जम्हाई लेने से कोई अपराध हुआ हो, कुछ त्रुटि हो गई हो, तो आप मुझे अबोध, अज्ञानी समझकर क्षमा करना- क्षमा करना-क्षमा करना पंचपरमेष्ठी के श्री चरणों में पुनः नमस्कार हो- नमस्कार हो- नमस्कार हो. ... नौ बार णमोकार।

इष्ट छत्तीसी

पंचपरमेष्ठी के 143 गुण की

1. अरहंत के छयालीस मूलगुण

चौतीसों अतिशय सहित, प्रातिहार्य पुनि आठ।
अनन्त चतुष्टय गुणसहित, छीयालीसों पाठ।

चौंतीस अतिशय

जन्मे दश अतिशय सहित, दश भये केवलज्ञान।
चौदह अतिशय देवकृत, समचौतीस प्रमान।

जन्म के दश अतिशय

अतिशय रूप सुगन्ध तन, नांहि पसेव निहार।
प्रिय हित वचन अतुल बल, रूधिर श्वेत आकार।।
लच्छन सहसरु आठ तन, समचतुष्क संठान।
वज्रवृष भनाराच जुत, ये जनमत के दश जान।।

केवलज्ञान के दश अतिशय

जोजन शतेइक में सुभिख, गगन-गमन मुख चार।
नहिं अदया उपसर्ग नहिं, नाहीं कवलाहार।।
सब विद्या ईश्वरपनो, नाहिं बढ़े नखकेश।
अनिमिष दृग छायारहित, दश केवलके वेश।।

देवकृत 14 अतिशय

देवरचित है चार दश, अर्धमागधी भाष।
आपस मांही मित्रता, निरमल दिश आकाश।।
होत फूल फल ऋतु सबै, पृथिवी कांच समान।
चरण-कमल-तल कमल है, नभतें जय जय बान।।
मन्द सुगन्ध बयारि पुनि, गन्धोदक की वृष्टि।

भूमिविषै कण्टक नहीं, हर्षमयी सब सृष्टि।।
धर्म चक्र आगे रहे, पुनि बसु मङ्गल सार।
अतिशय श्री अरहंत के ये चौंतीस प्रकार।

आठ प्रातिहार्य

तरु अशोक के निकट में, सिंहासन छविदार।
तीन छत्र सिर पर लसै, भामण्डल पिछवार।।
दिव्यध्वनि मुखतैं खिरै, पुष्पवृष्टि सुर होय।
ढारै चौंसठि चमर जख, बाजैं दुंदुभि जोय।।

अनन्तचतुष्टय

ज्ञान अनन्त अनन्त सुख, दरस अनन्त प्रमान।
बल अनन्त अरहन्त सो, इष्टदेव पहिचान।।

अष्टादश दोष वर्जन

जनम जरा तिरषा क्षुधा, विस्मय आरत खेद।
रोग शोक मद मोह भय, निद्रा चिन्ता स्वेद।
राग द्वेष अरु मरण जुत, ये अष्टादश दोष।
नाहिं होत अरहन्त के, सो छवि लायक मोष।।

2. सिद्धों के आठ गुण

समकित दरसन ज्ञान, अगुरुलघू अवगाहना।
सूच्छम वीरजवान, निराबाध गुन सिद्ध के।।

3. आचार्य के छत्तीस गुण

द्वादश तप दश धर्मजुत, पालै पंचाचार।
षट आवश्यक गुप्ति त्रय, आचारज पदसार।।

द्वादश तप

अनशन ऊनोदर करै, व्रतसंख्या रस छोर।
विवित्त शयन आसन धरै, कायकलेश सु ठोर।।

प्रायश्चित धर विनयजुत, वैयावृत स्वाध्याय।
पुनि उत्सर्ग विचार के, धरै ध्यान मनलाय।।

दश धर्म

छिमा मारदव आरजव, सत्यवचन चित्त पाग।
संजम तप त्यागी सरव, आकिंचन तियत्याग।।

छह आवश्यक

समता धर वन्दना करै, नाना थुति बनाय।
प्रतिक्रमण स्वाध्यायजुत, कायोत्सर्ग लगाय।।

पंचाचार और तीन गुप्ति

दर्शन ज्ञान चरित्र तप, वीरज पंचाचार।
गोपै मनवचकाय को, गिन छत्तीस गुण सार।।

4. उपाध्याय के पच्चीस गुण

चौदह पूरब को धरे, ग्यारह अंग सुजान।
उपाध्याय पच्चीस गुण, पढ़ै पढ़ावैं ज्ञान।।

ग्यारह अंग

प्रथम हि आचारांग गति दूजो सूत्रकृतांग।
ठाणअंग तीजो सुभग, चौथो समवायांग।।
व्याख्या पण्णति पंचमो, ज्ञातृकथा षट आन।
पुनि उपासकाध्ययन है, अन्तकृतदश ठान।।
अनुत्तर उत्पाद दश है, सूत्र विपाक पिछान।
बहुरि प्रश्नव्याकरण जुत, ग्यारह अंग प्रमाण।

चौदह पूर्व

उत्पादपूर्व अग्रायणी, तीजो वीरजवाद।
अस्ति नास्ति परवाद पुनि, पंचम ज्ञानप्रवाद।।
छट्ठी कर्म प्रवाद है, सत प्रवाद पहिचान।

अष्टम आत्मप्रवाद पुनि, नवमों प्रत्याख्यान।।
विद्यानुवाद पूरब दशम, पूर्वकल्याण महंत।
प्राणवाद किरिया बहुल, लोकबिंदु है अन्त।।

6. सर्वसाधु के अट्ठाईस मूलगुण

पंचमहाव्रत समिति पंच, पंचेन्द्रिय का रोध।
षट् आवश्यक साधु गुण, सात शेष अवबोध।।

पंच महाव्रत

हिंसा अनृत तसकरी, अब्रह्म परिग्रह पाप।
मनवचनतैं त्यागवो, पंचमहाव्रत थाप।।

पाँच समिति

ईर्या भाषा, एषणा, पुनि क्षेपन आदान।
प्रतिष्ठापना जुत क्रिया, पाँचों समिति विधान।।

पाँच इन्द्रियों का दमन एवं अन्य गुण

सपरस रसना नासिका, नयन श्रोत्रिका रोध।
षट्आवशि मज्जन तजन, शयन भूमि का शोध।।
वस्त्रत्याग कचलौंच अरु, लघु भोजन इक बार।
दातुन मुखमें ना करें, ठाडे लेहि आहार।।

इस प्रकार पंच परमेष्ठी के 143 गुणों का वर्णन हुआ।

नवप्रतिनारायण

1. अश्वग्रीव, 2. तारक, 3. मेरुक, 4. निशुम्भ, 5. मधु- कैटभ, 6. बली, 7. प्रहरण, 8. रावण, 9. जरासन्ध

(पाक्या) किस रोज किसका त्याग करें

रविवार को नमक, सोमवार को सब्जी, मंगलवार को मीठा, बुधवार को घी, बृहस्पतिवार को दूध, शुक्रवार को दही, शनिवार को तेल पाख्या करने वाले प्रयोग में न लावें।

पूजा के अङ्ग

1. अभिषेक, 2. आह्वान, 3. स्थापना, 4. सन्निधिकरण, 5. अष्ट द्रव्य पूजन, 6. जयमाला, 7. जाप, 8. शांतिपाठ, 9. विसर्जन

10. कल्पवृक्ष

1. मद्यांग, 2. तुर्यांग, 3. भूषणांग, 4. कुसुमांग, 5. दीप्तयांग, 6. ज्योतिरांग, 7. गृहांग, 8. भाजनांग, 9. भोजनांग, 10. वस्त्रांग

16. स्वर्ग

1. सौधर्म, 2. ऐशान, 3. सानत्कुमार, 4. माहेन्द्र, 5. ब्रह्म, 6. ब्रह्मोत्तर, 7. लांतव, 8. कापिष्ठ, 9. शुक्र, 10. महाशुक्र, 11. शतार, 12. सहस्त्रार, 13. आनत, 14. प्राणत, 15. आरण, 16. अच्युत।

सात नरक

1. रत्नप्रभा, 2. शर्करा प्रभा, 3. बालुका प्रभा, 4. पङ्कप्रभा, 5. धूम प्रभा, 6. तमः प्रभा, 7. महातमः प्रभा।

छह काल

1. सुषमा-सुषमा, 2. सुषमा, 3. सुषमा-दुःषमा, 4. दुःषमा सुषमा, 5. दुःषमा, 6. दुःषमा दुःषमा।

वर्तमान काल के बारह चक्रवर्ती

1. भरत, 2. सगर, 3. मघवान, 4. सनत्कुमार, 5. शांतिनाथ (तीर्थङ्कर), 6. कुंथुनाथ (तीर्थंकर), 7. अरनाथ, 8. सुभौम, 9. महापद्म, 10. हरिषेण, 11. जयसेन, 12. ब्रह्मदत्त।

नवनारायण

1. त्रिपृष्ठ, 2. द्विपिष्ठ, 3. स्वयम्भू, 4. पुरूषोत्तम, 5. पुरुषसिंह, 6. पुण्डरीक, 7. पुरुषदत्त, 8. लक्ष्मण, 9. श्रीकृष्ण।

नव बलभद्र

1. विजय, 2. अचल, 3. सुधर्म, 4. सुप्रभ, 5. सुदर्शन, 6. नन्दमित्र, 7. नन्दसेन, 8. रामचन्द्र, 9. बलदेव।

जैन दर्शन के मुख्य सात तत्व

1. जीव, 2. अजीव, 3. आस्रव, 4. बन्ध, 5. संवर, 6. निर्जरा, 7. मोक्ष।

छह द्रव्य

1. जीवद्रव्य, 2. पुद्गलद्रव्य, 3. धर्मद्रव्य, 4. अधर्मद्रव्य, 5. आकाशद्रव्य, 6. कालद्रव्य।

ग्यारह प्रतिमा

1. दर्शन प्रतिमा, 2. व्रत प्रतिमा, 3. सामायिक प्रतिमा, 4. प्रोषधोपवास प्रतिमा, 5. सचित्तत्याग प्रतिमा, 6. रात्रिभुक्तित्याग प्रतिमा, 7. ब्रह्मचर्य प्रतिमा, 8. आरम्भत्याग प्रतिमा, 9. परिग्रहत्याग प्रतिमा, 10. अनुमतित्याग प्रतिमा, 11. उद्दिष्टत्याग प्रतिमा।

अष्टमूल गुण

पाँच उदम्बर-1. बड-फल, 2. पीपल-फल, 3. पिलखन-फल, 4. गूलर-फल, 5. कठूमर, 6. तीन मकार-मद्य, मांस, मधु। इन आठों का त्याग करना अष्ट मूलगुण कहलाता है।

✦ ✦ ✦

पंचनमस्कार मंत्र का माहात्म्य

प्रबल कर्म धनराशि मिटाता, भव पर्वत को वज्र समान,
स्वर्ग मुक्तिपुर ले जाने में नेता जो निर्विघ्न प्रधान।
अंधकूपसम राग मोह में पतित जनों को दे अवलंब,
सर्व चराचर का संजीवन मंत्रराज है रक्षास्तंभ।।1।।
एक तरफ तो तीन लोक हो, मंत्रराज हो दूजी ओर,
रखकर यदि कोई तोलें तो मंत्रराज भारी ले ठौर।
पंच परमगुरु नमन रूप इस महामंत्र की जो महिमा,
उसको नहि कह सकता कोई चाहे जितनी मति गरिमा।।2।।
काल अनंते बीते पहले फिर आगे भी बीतेंगे,
उनमें शाश्वत रहा मंत्र यह, गाई महिमा गावेंगे।
नहीं आदि है नहीं अंत है मंत्र अनादि निधन यह ही,
इसको जो जपता है प्राणी शिव पद पाता है वह ही।।3।।
चलते-उठते गिरते-पड़ते और जागते या सोते,
नहाते धोते धरा पीठ पर चाहे लोट-पोट होते।
जो करता है स्मरण मंत्र का वांछित फल पा जाता है,
भक्ति भाव से प्रेरित होकर संकट सभी मिटाता है।।4।।
रण समुद्र के अरि भुजंग के सिंह व्याघ्र के रोगों के,
शत्रु अग्नि के वध-बंधन के और किये सब लोगों के।
चोर डाकिनी प्रेत ग्रहों के राक्षस भूत पिशाचों के,
इस नमस्कार मंत्र जपने से भय मिट सुख होते चोखे।।5।।

जो श्रद्धालु जितेन्द्रिय श्रावक पंच परमगुरु ध्यानी हो,
बुद्ध-शुद्ध उच्चारण करता, परमशुद्ध सुज्ञानी हो।
श्वेत सुगंध लाख पुष्पों से मंत्रराज को जो जपता,
विश्व पूज्य तीर्थंकर बनता, विधि पूर्वक ऐसा करता।।6।।
चन्द्र-सूर्य सम हो जाता है, और सूर्य होता शशिरूप,
नभ समान पाताल बनेगा, भूमि बनै सुरलोक अनूप।
अद्‌भुत महिमा मंत्रराज की, कहें कहाँ तक सब असमर्थ,
महामंत्र को जो जपता है, उसके सफलित वांछित अर्थ।।7।।
मुक्ति धाम जिसने भी पाया, उसने मंत्र जपा यह ही,
बिना नहीं इस मंत्र जाप्य के रहे सभी यों के यों ही।
सर्वजगत उद्धार हेतु यह, मंत्र शरीर बना जिनका,
उन्हीं ने शिव पद पाया है और क्लेश मेटा मनका।।8।।
चाहे हिंसक झूठा होवे परधान परनारी हर्त्ता।
अन्य निंद्य पापों में रत हो पर पाठ मंत्र का नित कर्त्ता।
वह अपराध शीघ्र छोड़ेगा अंत समय सुख पावेगा,
निज पापों की निंदा करके दुर्गति से बच जावेगा।।9।।
धर्म यही नवकार मंत्र है यही देव जिन पति का रूप,
यही सकल व्रतमूल लोक में यही अमृतफल रस का कूप।
अधिक कथन से क्या है मतलब यह अलभ्य फल का दाता,
ऐसा कोई भी नहिं वांछित जो इससे हो नहिं मिलता।।10।।
जो शिला लेख की भांति हृदय में मंत्रराज अंकित करता,
चलता फिरता उठता सोता जगता कुछ करता रहता।
दुख-सुख वन गिरि अब्धि गगन में, जहाँ-तहाँ भी रहो कहीं,

मंत्रराज का स्मरण करे जो पा सकता है क्लेश नहीं।।11।।
तीन लोक में सार अतुल अघ रिपु का हर्ता,
भव दुख करदे दूर विषम विष का है हर्ता।
करै कर्म निर्मूल सिद्धि सब सुख का दाता,
शिव सुख केवल बोध देत उसे जो जपता रहता।।12।।
सुरसंपद को यह देता मुक्ति रमा को वश करता,
चारों गति की विपदा हरता निज रिपुओं की कृति हरता।
दुर्गति का यह स्तंभन करता रागद्वेष सारे हरता,
पंच नमन भय मंत्राराधन सब ही की रक्षा करता।।13।।

दोहा

सुख दुःख संकट विपद में रण में दुर्गम पथ।
जपो मंत्र नवकार नित सब विघ्नों का अन्त।।14।।
सब पापों को नाशता महामंत्र नवकार।
सभी मंगलों में प्रथम सकल सिद्धि आधार।।15।।
नर सुर मुनि नृप इंद्र भी जपें भक्ति उरधार।
पंच परमपद को नमन सौख्य शांति विस्तार।।16।।

जीवन के वे ही क्षण पुण्य के क्षण कहलाते हैं जिनमें हमें संत समागम व प्रभु भजन के अवसर मिलते हैं।

* * *

सुख चाहते हो तो रात में खाना नहीं, शांति चाहते हो तो दिन में सोना नहीं, सम्मान चाहते हो तो व्यर्थ में बोलना नहीं और निर्वाण चाहते हो तो धर्म को छोड़ना नहीं।

गुरु स्तुति

पं. भूधरदासकृत

ते गुरु मेरे मन बसो, जे भवजलधि जहाज।
आप तिरैं पर तारही, ऐसे श्री ऋषिराज।।1।।टेक।।

मोह महारिपु जानिकै, छांड्यो सब घरबार।
होय दिगम्बर वन बसे, आतम शुद्ध विचार।।2।।

रोग उरग बिल वपु गिण्यो, भोग भुजङ्ग समान।
कदली तरु संसार है, त्यागो सब यह जान।।3।।

रतनत्रय निधि उर धरैं, अरु निरग्रन्थ त्रिकाल।
मारयों काम खबीस को, स्वामी परम दयाल।।4।।

पंच महाव्रत आचरैं, पाँचों समिति समेत।
तीन गुपति पालैं सदा, अजर अमर पद हेत।।5।।

धर्म धरै दश लक्षणी, भावैं भावना सार।
सहैं परीषह बीस द्वै चारित रतन भण्डार।।6।।

जेठ तपैं रवि आकरो सूखै सरवर नीर।
शैल शिखर मुनि तप तपैं दाझै नगन शरीर।।7।।

पावस रैन डरावनी बरसै जलधर धार।
तरुतल निवसैं साहसी चालै झंझाधार।।8।।

शीत पड़े कपि-मद गले, दाहै सब वनराय।
ताल तरंगनि के तटै, ठाड़े ध्यान लगाय।।9।।

इह विधि दुद्धर तप तपैं, तीनों कालमंझार।
लागे सहज सरूप में, तनसों ममत निवार।।10।।
पूरब भोग न चिन्तवै, आगम वांछा नाहिं।
चँहुगति के दुखसों डरै, सुरति लगी शिवमाँहि।।11।।
रंग महल में पोढ़ते, कोमल सेज बिछाय।
ते पश्चिम निशि भूमि में सोवैं संवरि काय।।12।।
गज चढ़ि चलते गरव सों, सेना सजि चतुरङ्ग।
निरखि-निरखि पग ते धरैं, पालैं करुणा अंग।।13।।
वे गुरु चरण जहाँ धरैं, जग में तीरथ जेह।
सो रज मम मस्तक चढ़ो, 'भूधर' माँगै एह।।14।।

✦ ✦ ✦

गुरू के वचनों में जिसकी आस्था नहीं है उसके लिए दुःख से छूटने का रास्ता भी नहीं है।

* * *

दृढ़ विश्वास तथा उत्साह शक्ति आपके दो परम मित्र हैं, जो आपके कदमों को अविराम सफलता की चरम सीमा तक ले जायेंगे।

आत्म-कीर्तन

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता दृष्टा आतम-राम ।टेक।
मैं वह हूँ जो है भगवान, जो मैं हूँ वह है भगवान।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यह राग वितान।।1।।

मम स्वरूप है सिद्ध-समान, अमित शक्ति सुखज्ञान निधान।
किन्तु आश-वश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान।।2।।

सुख दुख दाता कोई न आन, मोह राग ही दुख की खान।
निज को निज पर को पर जान, फिर दुख का नहि लेश निदान।।3।।

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम।
राग त्याग पहुँचू निज धाम, आकुलता का फिर क्या काम।।4।।

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का करता क्या काम।
दूर हटो पर-कृत परिणाम, ज्ञायक भाव लखूँ अभिराम।।5।।

✦ ✦ ✦

इतनी दूर दृष्टि भी मत रखो कि लक्ष्य से विचलित हो जाओ और ऐसे आँख मूँदकर भी मत चलो कि गड्ढे में गिर पड़ो।

* * *

गुरु की डाँट सफलता की सीढ़ी है और उपेक्षा असफलता की फिसलपट्टी, अतः गुरू की डाँट अच्छी है पर उपेक्षा नहीं।

जिनवाणी स्तुति

(1)

माता तू दया करके, कर्मों से छुड़ा लेना।
इतनी सी विनय तुमसे, चरणों में जगह देना।।

1. माता आज मैं भटका हूँ, माया के अंधेरे में।
कोई नहीं मेरा है, इस कर्म के रेले में।
कोई नहीं मेरा है, तुम धीर बँधा देना।।
इतनी.................

2. जीवन के चौराहे पर, मैं सोच रहा कब से।
जाऊँ तो किधर जाऊँ, यह पूछ रहा तुमसे।
पथ भूल गया हूँ मैं, तुम राह दिखा देना।।
इतनी.................

3. लाखों को उबारा है, मुझको भी उबारो तुम।
मझधार में है नैया, उसको भी तिरा दो तुम।
मझधार में अटका हूँ, भव पार लगा देना।।
इतनी.................

(2)

चरणों में आ पड़ा हूँ, हे द्वादशांग वाणी।
मस्तक झुका रहा हूँ, हे द्वादशांग वाणी।।टेक।।
मिथ्यात्व को नशाया, निज तत्त्व को बताया।
आपा-पराया भासा, हो भानु के समानी।।1।।
षट्द्रव्य को बताया, स्याद्वाद को जताया।
भव-फन्द से छुड़ाया, सच्ची जिनेन्द्र वाणी।।2।।

रिपु चार मेरे मग में, जन्जीर डाले पग में।
ठाड़े हैं मोक्षमग में, तकरार मोसों ठानी।।3।।
दे ज्ञान मुझको माता, इस जग से तोड़ूँ नाता।
होवे सुदर्शन साता, नहिं जग में तेरी सानी।।4।।

(3)

जिनवाणी मोक्ष नसैनी है, जिनवाणी।।टेक।।
जीव कर्म के जुदा करन को, ये ही पैनी छैनी है।।जिनवाणी।।1।।
जो जिनवाणी नित अभ्यासे, वो ही सच्चा जैनी है।।जिनवाणी।।2।।
जो जिनवाणी उर न धरत है, सैनी हो के असैनी है।।जिनवाणी।।3।।
पढ़ो सुनो ध्यावो जिनवाणी, जो सुख शांति लेनी है।।जिनवाणी।।4।।

(4)

जिनवाणी माता दर्शन की बलिहारियाँ-2
1.प्रथम देव अरहन्त मनाऊँ, गणधर जी को ध्याऊँ।
कुन्दकुन्द आचार्य हमारे, तिनको शीश नवाऊँ।
।।जिनवाणी।।1
2. योनि लाख चौरासी माँही, घोर महादुख पायो।
ऐसी महिमा सुनकर माता, शरण तुम्हारी आयो।।
।।जिनवाणी।।2
3. जाने ताकौ शरणा लीनो, अष्ट कर्म क्षय कीनो।
जामन-मरण मेंट के माता, मोक्ष महापद दीनो।
।।जिनवाणी।।3
4. ठाड़े श्रावक अरज-करत हैं, हे जिनवाणी माता।
द्वादशाङ्ग चौदह पूरब को, कर दो हमको ज्ञाता।
।।जिनवाणी।।4

(5)

मिथ्यातम नाशवे को, ज्ञान के प्रकाशवे को।
आपा पर भासवे को, भानु सी बखानी है।।
छहों द्रव्य जानवे को, बन्ध विधि भानवै को।
स्व पर पिछानवै को परम प्रमानी है।।
अनुभव बतायवे को जीव को जतायवे को।
काहू न सतायवे को, भव्य उर आनी है।
जहाँ-तहाँ तारवे को, पार के उतारवे को।।
सुख विस्तारवे को यही जिनवाणी है।।
हे जिनवाणी भारती, तोहि जपूँ दिन रैन।
जो तोहि शरणा गहै, सो पावै सुख चैन।।
जिनवाणी के ज्ञान से, सूझे लोकालोक।
सो वाणी मस्तक नमूँ सदा देत हूँ धोक।।

(6)

वीर हिमाचल तैं निकसी, गुरु गौतम के मुख कुंड ढरी है।
मोह महाचल भेद चली, जग की जड़ता तप दूर करी है।।
ज्ञान पयोनिधि माहि रली, बहुभंग तरंगनि सों उछरी है।
ता शुचि शारद गंग नदी प्रति में अंजुलिकर शीश धरी है।।1।।
या जग मन्दिर में अनवार अज्ञान अंधेर छयो अति भारी।
श्री जिनकी धुनि दीप शिखा सम जो नहिं होत प्रकाशन-हारी।।
तो किस भाँति पदारथ पाँति, कहाँ लहते-रहते अविचारी।
या विधि संत कहैं धनि हैं धनि हैं जिन बैन बड़े उपकारी।।2।।

✦ ✦ ✦

श्री आदिनाथ चालीसा

दोहा

शीश नवा अरिहंत को, सिद्धन करूँ प्रणाम।
उपाध्याय आचार्य का, ले सुखकारी नाम।।
सर्व साधु और सरस्वती, जिन मन्दिर सुखकार।
आदिनाथ भगवान को, मन मन्दिर में धार।।

चौपाई

जै जै आदिनाथ जिन स्वामी, तीनकाल तिहूँ जग में नामी।
वेष दिगम्बर धार रहे हो, कर्मों को तुम मार रहे हो।
हो सर्वज्ञ बात सब जानो, सारी दुनिया को पहिचानो।
नगर अयोध्या जो कहलाये, राजा नाभिराय बतलाये।
मरुदेवी माता के उदर से, चैतवदी नवमी को जन्मे।।
तुमने जग को ज्ञान सिखाया, कर्मभूमि का बीज उपाया।
कल्पवृक्ष जब लगे विघटने, जनता आई दुखड़ा कहने।।
सब का संशय तभी भगाया, सूर्य चन्द्र का ज्ञान कराया।
खेती करना भी सिखलाया, न्याय दण्ड आदिक समझाया।।
तुमने राज किया नीति का, सबक आपसे जग ने सीखा।
पुत्र आपका भरत बताया, चक्रवर्ती जग में कहलाया।।
बाहुबली जो पुत्र तुम्हारे, सबसे पहले मोक्ष सिधारे।
सुता आपकी दो बतलाई, ब्राह्मी और सुन्दरी कहलाई।।
उनको भी विद्या सिखलाई, अक्षर और गिनती बतलाई।
इक दिन राजसभा के अन्दर, एक अप्सरा नाच रही थी।।
आयु बहुत थोड़ी थी बाकी, इसलिए वह थोड़ा नाची।
जभी मर गई जिसे देखकर, झट आया वैराग्य उमड़कर।।

बेटों को झट पास बुलाया, राज पाट सब में बँटवाया।
छोड़ सभी झंझट संसारी, वन जाने की करी तैयारी।।
राजा हजारों साथ सिधाए, राजपाट तज वन को धाये।
लेकिन जब तुमने तप कीना, सबने अपना रस्ता लीना।।
वेष दिगम्बर तजकर सबने, छाल आदि के कपड़े पहिने।
भूख-प्यास से जब घबराये, फल आदिक खा भूख मिटाये।।
तीन सौ त्रेसठ धर्म फैलाये, जो अब दुनिया में दिखलाये।
छः महीने तक ध्यान लगाये, फिर भोजन करने को आये।।
भोजन विधि जाने नाहि कोय, कैसे प्रभु का भोजन होय।
इसी तरह बस चलते-चलते, छः महीने भोजन को बीते।।
नगर हस्तिनापुर में आये, राजा सोम श्रेयांस बताए।
याद तभी पिछला भव आया, तुमको फौरन ही पड़गाया।।
रस गन्ने का तुमने पाया, दुनिया को उपदेश सुनाया।
तप कर केवल ज्ञान उपाया, मोक्ष गए सब जग हर्षाया।।
अतिशय युक्त तुम्हारा मन्दिर, एक है मरसलगंज के अन्दर।
उसका यह अतिशय बतलाया, कष्ट क्लेश का होय सफाया।।
मानतुंग पर दया दिखाई, जंजीरे सब काट गिराई।
राजसभा में मान बढ़ाया, जैन धर्म जग में फैलाया।।
मुझ पर भी महिमा दिखलाओ, कष्ट चन्द्र का दूर भगाओ।

सोरठा

नित चालीस हि बार, पाठ करे चालीस दिन,
खेवे धूप अपार मरसलगंज में आय के।
होय कुबेर समान, जन्म दरिद्री होय जो,
जिसके नहिं संतान, नाम वंश जग में चले।।
मंत्र-ऊँ ह्रीं अर्हं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय नमः।।

श्री पद्मप्रभु चालीसा

शीश नवा अरिहंत को, सिद्धन करूँ प्रणाम।
उपाध्याय आचार्य का, ले सुखकारी नाम।।
सर्व साधु और सरस्वती, जिन मन्दिर सुखकार।
पद्मपुरी के पद्म को, मन मन्दिर में धार।।

।। चौपाई ।।

जय श्री पद्म प्रभु गुणधारी, भविजन को तुम हो हितकारी।
देवों के तुम देव कहाओ, छट्ठे तीर्थंकर कहलाओ।।
तीन काल तिहुँ जग की जानो, सब बातें क्षण में पहचानो।
वेष दिगम्बर धारण कारे, तुम से कर्म शत्रु भी हारे।।
मूर्ति तुम्हारी कितनी सुन्दर, दृष्टि सुखद जमती नासा पर।
क्रोध मान-मद लोभ भगाया, राग-द्वेष का लेश न पाया।।
वीतराग तुम कहलाते हो, सब जग के मन को भाते हो।
कौशाम्बी नगरी कहलाये, राजा धारण जी बतलाये।।
सुन्दर नाम सुसीमा उनके, जिनके उर से स्वामी जन्मे।
कितनी लम्बी उमर कहाई, तीस लाख पूरब बतलाई।।
इक दिन हाथी बँधा निरख कर, झट आया वैराग्य उमड़कर।
कार्तिक सुदी त्रयोदशी भारी, तुमने मुनि पद दीक्षा धारी।।
सारे राज-पाट को तज के, तभी मनोहर वन में पहुँचे।
तप कर केवल ज्ञान उपाया, चैत्र सुदी पूनम कहलाया।।
एक सौ दस गणधर बतलाये, मुख्य वज्र चामर कहलाये।
लाखों मुनि आर्यिका लाखों, श्रावक और श्राविका लाखों।।
असंख्यात तिर्यंच बताये, देवी देव गिनत नहीं पाये।
फिर सम्मेदशिखर पर जाकर, शिव-रमणी को ली परणाकर।।

पंचम काल महा दुखदाई जब तुमने महिमा दिखलाई।
जयपुर राज ग्राम बाड़ा है, स्टेशन शिवदासपुरा है।।
मूला नाम जाट का लड़का, घर की नींव खोदने लागा।
खोदत-खोदत मूर्ति दिखाई, उसने जनता को बतलाई।।
चिन्ह् कमल लख लोग लुगाई, पद्मप्रभु की मूर्ति बताई।
मन में अति हर्षित होते हैं, अपने दिल का मल धोते हैं।।
तुमने यह अतिशय दिखलाया, भूत-प्रेत को दूर भगाया।
जब गंधोदक छींटे मारे, भूत-प्रेत तब आप बकारे।।
जपने से जब नाम तुम्हारा, भूत-प्रेत वो करे किनारा।
ऐसी महिमा बतलाते हैं, अन्धे भी आँखें पाते हैं।।
प्रतिमा श्वेत वर्ण कहलाये, देखत ही हिरदय को भाये।
ध्यान तुम्हारा जो धरता है, इस भव से वह नर तरता है।।
अन्धा देखे गूंगा गावे, लंगड़ा पर्वत पर चढ़ जावे।
बहरा सुन-सुनकर खुश होवे, जिस पर कृपा तुम्हारी होवे।।
मैं हूँ स्वामी दास तुम्हारा, मेरी नैय्या कर दो पारा।
चालीसे को चन्द्र बनावे, पद्म प्रभु को शीश नवावे।।
पूरनमल रचकर चालीसा, हे प्रभु! तोहि नवावत शीशा।

।। सोरठा ।।

नित चालीसहिं बार, पाठ करे चालीस दिन।
खेय सुगन्ध अपार, पद्मपुरी में आय के।।
होय कुबेर समान, जनम दरिद्री होय जो।
जिनके नहिं सन्तान, नाम वंश जग में चले।।

मंत्र- ।। ऊँ ह्रीं भूत प्रेत बाधा निवारणाय पद्म प्रभु जिनेन्द्राय नमः ।।

✦ ✦ ✦

श्री चन्द्रप्रभु चालीसा (तिजारा)

वीतराग सर्वज्ञ जिन, जिनवाणी को ध्याय।
लिखने का साहस करूं, चालीसा सिर नाय।।
देहरे के श्री चन्द को पूजों मन वच काय।
ऋद्धि सिद्धि मंगल करें, विघ्न दूर हो जाय।।

।।चौपाई।।

जय श्री चन्द्र दया के सागर, देहरे वाले ज्ञान उजागर।
शांति छवि मूरति अति प्यारी, भेष दिगम्बर धारा भारी।।
नासा पर है दृष्टि तुम्हारी, मोहनी मूरति कितनी प्यारी।
देवों के तुम देव कहावो, कष्ट भक्त के दूर हटावो।।
समन्तभद्र मुनिवर ने ध्याया, पिंडी फटी दर्श तुम पाया।
तुम जग में सर्वज्ञ कहावो, अष्टम तीर्थंकर कहलावो।।
महासेन के राजदुलारे, मात सुलक्षणा के हो प्यारे।
चन्द्रपुरी नगरी अति नामी, जन्म लिया चन्द्र-प्रभु स्वामी।।
पौष वदी ग्यारस को जन्मे, नर-नारी हरषे तब मन में।
काम क्रोध तृष्णा दुखकारी, त्याग सुखद मुनि दीक्षा धारी।।
फाल्गुन वदी सप्तमी भाई, केवल ज्ञान हुआ सुखदाई।
फिर सम्मेद शिखर पर जाके, मोक्ष गये प्रभु आप वहाँ से।।
लोभ मोह और छोड़ी माया, तुमने मान कषाय नसाया।
रागी नहीं, नहीं तू द्वेषी, वीतराग तू हित उपदेशी।।
पंचम काल महा दुखदाई, धर्म कर्म भूले सब भाई।
अलवर प्रान्त में नगर तिजारा, होय जहाँ पर दर्शन प्यारा।।
उत्तर दिशि में देहरा माहीं, वहाँ आकर प्रभुता प्रगटाई।
सावन सुदि दशमी शुभ नामी, आन पधारे त्रिभुवन स्वामी।।

चिन्ह चन्द्र का लख नर-नारी, चन्द्रप्रभु की मूरति मानी।
मूर्ति आपकी अति उजियाली, लगता हीरा भी है जाली।।
अतिशय चन्द्र प्रभु का भारी, सुनकर आते यात्री बारी।
फाल्गुन सुदी सप्तमी प्यारी, जुड़ता है मेला यहाँ भारी।।
कहलाने को तो शशि धर हो, तेज पुंज रवि से बढ़कर हो।
नाम तुम्हारा जग में साँचा, ध्यावत भागत भूत-पिशाचा।।
राक्षस भूत-प्रेत सब भागें, तुम सुमरत भय कभी न लागे।
कीर्ति तुम्हारी है अति भारी, गुण गाते नित नर और नारी।।
जिस पर होती कृपा तुम्हारी, संकट झट कटता है भारी।
जो भी जैसी आस लगाता, पूरी उसे तुरत कर पाता।।
दुखिया दर पर जो आते हैं, संकट सब खो कर जाते हैं।
खुला सभी को प्रभु द्वार है, चमत्कार को नमस्कार है।।
अन्धा भी यदि ध्यान लगावे, उसके नेत्र शीघ्र खुल जावें।
बहरा भी सुनने लग जावे, पगले का पागलपन जावे।।
अखंड ज्योति का घृत जो लगावे, संकट उसका सब कट जावे।
चरणों की रज अति सुखकारी, दुख दरिद्र सब नाशनहारी।।
चालीसा जो मन से ध्यावे, पुत्र पौत्र सब सम्पत्ति पावे।
पार करो दुखियों की नैया, स्वामी तुम बिन नहीं खिवैया।।
प्रभु मैं तुम से कुछ नहिं चाहूं, दर्श तिहारा निश दिन पाऊँ।

करूँ वंदना आपकी, श्री चन्द्र प्रभु जिनराज।
जंगल में मंगल कियो, रखो 'सुरेश' की लाज।।

जाप :- ऊँ ह्रीं अर्हं चन्द्रप्रभु जिनेन्द्राय नमः

✦ ✦ ✦

श्री शांतिनाथ चालीसा

दोहा

शान्तिनाथ महाराज का, चालीसा सुखकार।
मोक्ष प्राप्ति के लिये, कहूँ सुनो चित्त धार।।
चालीसा चालीस दिन तक, कह चालीस बार।
बढ़े जगत सम्पन्न सुमत, अनुपम शुद्ध विचार।।

।।चौपाई।।

शान्तिनाथ तुम शांतिनायक, पंचम चक्री जग सुखदायक।
तुम्हीं सोलहवें हो तीर्थंकर, पूजें देव भूप सुर गणधर।।
पंचाचार गुणों के धारी, कर्म रहित आठों गुणकारी।
तुमने मोक्ष मार्ग दर्शाया, निज गुण ज्ञान भानु प्रकटाया।।
स्याद्वाद विज्ञान उचारा, आप तिरे औरन को तारा।
ऐसे जिन को नमस्कार कर, चढूँ सुमत शान्ति नौका पर।।
सूक्ष्म सो कुछ गाथा गाता, हस्तिनापुर जग विख्याता।
विश्वसेन पितु ऐरा माता, सुर तिहुँ काल रत्न बर्षाता।।
साढ़े दस करोड़ नित गिरते, ऐरा माँ के आँगन भरते।
पन्द्रह माह तक हुई लुटाई, ले गये भर-भर लोग लुगाई।।
भादों वदी सप्तमी गर्भाते, उत्तम सोलह सपने आते।
सुर चारों कायों के आये, नाटक गायन नृत्य दिखाये।।
सेवा में जो रही देवियाँ रखती खुश माँ को दिन रतियाँ।
जन्म जेठ वदी चौदस के दिन, घंटे अनहद बजे गगन घन।।
तीनों ज्ञान लोक सुख दाता, मंगल सकल हर्ष गुण लाता।
इन्द्र देव सुर सेवा करते, विद्या कला ज्ञान गुण बढ़ते।।

अंग अंग सुन्दर मन मोहन, रत्न जड़ित तन वस्त्राभूषण।
बल विक्रम यश वैभव काजा, जीते छहों खण्ड के राजा।।
न्यायवान दानी उपकारी, परजा हर्षित निर्भय सारी।
दीन अनाथ दुःखी नहीं कोई, होती उत्तम वस्तु बोई।।
ऊँचे आप आठ सौ गज थे, वदन स्वर्ण और चिन्ह हिरण थे।
शक्ति ऐसी थी जिनस्वामी, बरीं हजार छियानवें रानी।।
लख चौरासी हाथी रथ थे, घोड़े करोड़ अठारह शुभ थे।
सहस पचास भूप के राजन, अरबों सेवा में सेवक जन।।
तीन करोड़ थी सुन्दर गइयाँ, इच्छा पूर्ण करे नौ निधियाँ।
चौदह रत्न व चक्र सुदर्शन, उत्तम भोग वस्तुयें अनगिन।।
थी अड़तालीस करोड़ ध्वजायें, कुण्डल चन्द्र सूर्य सम छायें।
अमृत गर्भ नाम का भोजन, लाजवाब ऊँचा सिंहासन।।
लाखों मन्दिर भवन सुसज्जित नारसहित तुम जिनमें शोभित।
जितना सुख था शान्तिनाथ को, अनुभव होता ज्ञानवान को।।
चल जीव जो त्याग धर्म पर, मिले ठाठ उनको ये सुखकर।
पच्चीस सहस्त्र वर्ष सुख पाकर, उमड़ा त्याग हितकर तुम पर।।
जग तुमने क्षण भंगुर जाना, वैभव सब सुपने सम जाना।
ज्ञानोदय जब हुआ तुम्हारा, पाये शिवपुर तज संसारा।।
कामी मनुज काम को त्यागे, पापी पाप कर्म से भागे।
सुत नारायण तख्त बिठाया, तिलक चढ़ा अभिषेक कराया।।
नाथ आपको बिठा पालकी, देव चले ले राह गगन की।
इत उत इन्दर चंवर ढुरावें, मंगल गाते वन पहुँचावें।।
भेष दिगम्बर अपना कीना, केश लोंच पंच मुष्ठी कीना।

पूर्ण हुआ उपवास छठा जब, शुद्धाहार चले लेने तब।।
कर तीनों वैराग चिंतवन्, चारों ज्ञान किये सम्पादन।
चार हाथ मग लखते चलते, षट् कायिक की रक्षा करते।।
मनहर मीठे वचन उचरते, प्राणी मात्र का दुखड़ा हरते।
नाशवान काया यह प्यारी, इससे हो यह रिश्तेदारी।।
इनसे मात-पिता सुत नारी, इनके कारण फिरे दुखारी।
गर यह तन ही प्यारा लगता, तरह-तरह का रहेगा मिलता।।
तज नेह काया माया का, हो भरतार मोक्ष दारा का।
विषय भोग सब दुख के कारण, त्याग धर्म ही शिव के साधन।।
निधि लक्ष्मी जो कोई त्यागे, उसके पीछे-पीछे भागे।
प्रेम रूप जो इसे बुलावे, उसके पास कभी नहीं आवे।।
करने को जग का निस्तारा, छहों खण्ड का राज विसारा।
देवी देव सुरासुर आये, उत्सव तप कल्याण मनाये।।
पूजन नृत्य करें नत मस्तक, गाई महिमा प्रेम पूर्वक।
करते तुम आहार जहाँ पर, देव रतन वर्षाते उस पर।।
जिस घर दान पात्र को मिलता, घर वह नित्य फूलता फलता।
आठो गुण सिद्धों के ध्याकर, दशों धर्म चित काय तपाकर।।
केवल ज्ञान आपने पाया, लाखों प्राणी पार लगाया।
समवशरण में ध्वनि विखराई, प्राणी मात्र के समझ में आई।।
समवशरण प्रभु का जहां जाता, कोस चार सौ तक सुख पाता।
फूल फलादिक मेवा आती, हरी भरी खेती लहराती।।
सेवा में छत्तीस थे गणधर, महिमा मुझसे क्या हो वर्णन।
नकुल, सर्प, मृग हरि से प्राणी, प्रेम सहित मिल पीते पानी।।

आप चतुरमुख विराजमान थे, मोक्ष-मार्ग को दिव्यवान थे।
करते आप विहार गगन में, अन्तरिक्ष थे समवशरण में।।
तीनों जग आनन्दित कीने, हित उपदेश हजारों दीने।
पौने लाख बरस हित कीना, उम्र रही जब एक महीना।।
श्री सम्मेद शिखर पर आये, अजर अमर पद तुमने पाये।
निस्पृह कर उद्धार जगत के, गये मोक्ष लाख बरस के।।
आंक सकें क्या छवि ज्ञान की, जोत सूर्य सम अटल आपकी।
बहे सिन्धु सम गुण की धारा, रहे 'सुमत' चित नाम तुम्हारा।।

।।सोरठा।।

नित चालीसहिं बार, पाठ करे चालीस दिन।
खेय धूप सुसार, शान्तिनाथ के सामने।।
होवे चित्त प्रसन्न, भय चिन्ता शंका मिटै।
पाप होय सब हन्न, बल विद्या वैभव बढ़े।।

जाप - ॐ ह्रीं अर्हं सर्व शान्ति कराय श्री शान्तिनाथाय नमः।।

✦ ✦ ✦

श्री पार्श्वनाथ चालीसा

दोहा

शीश नवा अरिहंत को, सिद्धन करुँ प्रणाम।
उपाध्याय आचार्य का, ले सुखकारी नाम।।
सर्व साधु और सरस्वती, जिन मन्दिर सुखकार।
अहिच्छत्र श्रीपार्श्व को, मन-मन्दिर में धार।।

।।चौपाई।।

पारसनाथ जगत हितकारी, हो स्वामी तुम व्रत के धारी।
सुर नर असुर करें तुम सेवा, तुम ही सब देवन के देवा।।1।।
तुमसे करम शत्रु भी हारा, तुम कीना जग का निस्तारा।
अश्वसेन के राजदुलारे, वामा की आँखों के तारे।।2।।
काशी जी के स्वामी कहाये, सारी परजा मौज उड़ाये।
इक दिन सब मित्रों को लेके, सैर करन को वन में पहुँचे।।3।।
हाथी पर कस कर अम्बारी, इक जंगल में गई सवारी।
एक तपस्वी देख वहाँ पर, उससे बोले वचन सुनाकर।।4।।
तपसी! तुम क्यों पाप कमाते, उस लक्कड़ में जीव जलाते।
तपसी तभी कुदाल उठाया, उस लक्कड़ को चीर गिराया।।5।।
निकले नाग-नागनी कारे, मरने के थे निकट बिचारे।
रहम प्रभु के दिल में आया, तभी मन्त्र नवकार सुनाया।।6।।
मर कर वो पाताल सिधाये, पद्मावती धरणेन्द्र कहाये।
तपसी मर कर देव कहाया, नाम कमठ ग्रंथों में गाया।।7।।
एक समय श्री पारस स्वामी, राज छोड़कर वन की ठानी।
तप करते थे ध्यान लगाये, इकदिन कमठ वहाँ पर आये।।8।।
फौरन ही प्रभु को पहिचाना, बदला लेना दिल में ठाना।
बहुत अधिक बारिश बरसाई, बादल गरजे बिजली गिराई।।9।।
बहुत अधिक पत्थर बरसाये, स्वामी तन को नहीं हिलाये।

पद्मावती धरणेन्द्र भी आये, प्रभु की सेवा में चित लाये।।10।।
पद्मावती ने फन फैलाया, उस पर स्वामी को बैठाया।
धरणेन्द्र ने फन फैलाया, प्रभु के सिर पर छत्र बनाया।।11।।
कर्मनाश प्रभु ज्ञान उपाया, समवशरण देवेन्द्र रचाया।
यही जगह अहिच्छत्र कहाये, पात्र केशरी जहाँ पर आये।।12।।
वह पण्डित ब्राह्मण विद्वाना, जिनको जाने सकल जहाना।
शिष्य पाँच सो संग में आये सब कट्टर ब्राह्मण कहलाये।।
पार्श्वनाथ का दर्शन पाया, सबने जैन धरम अपनाया।।13।।
अहिच्छत्र श्री सुन्दर नगरी, जहाँ सुखी थी प्रजा सगरी।
राजा श्री वसुपाल कहाये, वो इक जिन मन्दिर बनवाये।।14।।
प्रतिमा पर पॉलिश करवाया, फौरन इक मिस्त्री बुलवाया।
वह मिस्त्री माँस खाता था, इससे पॉलिश गिर जाता था।।15।।
मुनि ने उसे उपाय बताया, पारस दर्शन व्रत दिलवाया।
मिस्त्री ने व्रत पालन कीना, फौरन ही रंग चढ़ा नवीना।।16।।
गदर सतावन का किस्सा है, इक माली को यों लिक्खा है।
माली एक प्रतिमा को लेकर झट छुप गया कुए के अन्दर।।17।।
उस पानी का अतिशय भारी, दूर होय सारी बीमारी।
जो अहिच्छत्र हृदय से ध्यावे, सो नर उत्तम पदवी पावे।।18।।
पुत्र संपदा की बढ़ती हो, पापों की इक दम घटती हो।
है तहसील आंवला भारी, स्टेशन पर मिले सवारी।।19।।
रामनगर इक ग्राम बराबर, जिसको जाने सब नारी नर।
चालीसे को "चन्द्र" बनाये, हाथ जोड़कर शीश नवाये।।20।।

।।सोरठा।।

नित चालीसहिं बार, पाठ करे चालीस दिन।
खेय सुगन्ध अपार, अहिच्छत्र में आय के।।
होय कुबेर समान, जन्म दरिद्री होय जो।
जिसके नहीं सन्तान, नाम वंश जग में चले।।

जाप-ऊँ ह्रीं अर्हं श्री चिन्तामणी पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।

श्री महावीर चालीसा

दोहा

शीश नवा अरिहन्त को, सिद्धन करूँ प्रणाम।
उपाध्याय आचार्य का, ले सुखकारी नाम।।
सर्व साधु और सरस्वती, जिन मन्दिर सुखकार।
महावीर भगवान को, मन मन्दिर में धार।।

।।चौपाई।।

जय महावीर दयालु स्वामी, वीर प्रभु तुम जग में नामी।
वर्धमान है नाम तुम्हारा, लगे हृदय को प्यारा-प्यारा।।
शाँति छवि और मोहनी मूरत, शान हंसीली सोहनी सूरत।
तुमने वेष दिगम्बर धारा, कर्म शत्रु भी तुम से हारा।।
क्रोध मान और लोभ भगाया, माया मोह ने तुमसे डर खाया।
तू सर्वज्ञ सर्व का ज्ञाता, तुझको दुनिया से क्या नाता।।
तुझमें नहीं राग और द्वेष, वीतराग तू हितोपदेश।
तेरा नाम जगत में सच्चा, जिसको जाने बच्चा-बच्चा।।
भूत-प्रेत तुम से भय खावें, व्यन्तर राक्षस सब भग जावें।
महा व्याध मारी न सतावे, महा विकराल काल डर खावे।।
काला नाग होय फनधारी, या हो शेर भयंकर भारी।
ना हो कोई बचाने वाला, स्वामी तुम्हीं करो प्रतिपाला।।
अग्नि दावानल सुलग रही हो, तेज हवा से भड़क रही हो।
नाम तुम्हारा सब दुख खोवे, आग एकदम ठण्डी होवे।।
हिंसामय था भारत सारा, तब तुमने कीना निस्तारा।
जन्म लिया कुण्डलपुर नगरी, हुई सुखी तब प्रजा सगरी।।
सिद्धारथ जी पिता तुम्हारे, त्रिशला की आँखों के तारे।

छोड़ सभी झंझट संसारी, स्वामी हुए बाल ब्रह्मचारी।।
पंचम काल महा दुखदाई, चाँदनपुर महिमा दिखलाई।
टीले में अतिशय दिखलाया, एक गाय का दूध गिराया।।
सोच हुआ मन में ग्वाले के, पहुँचे एक फावड़ा लेके।
सारा टीला खोद भगाया, तब तुमने दर्शन दिखलाया।।
जोधराज को दुख ने घेरा, उसने नाम जपा जब तेरा।
ठंडा हुआ तोप का गोला, तब सबने जयकारा बोला।।
मन्त्री ने मन्दिर बनवाया, राजा ने भी दरब लगाया।
बड़ी धर्मशाला बनवाई, तुमको लाने को ठहराई।।
तुमने तोड़ी बीसों गाड़ी, पहिया मसका नहीं अगाड़ी।
ग्वाले ने जो हाथ लगाया, फिर तो रथ चलता ही पाया।।
पहिले दिन वैशाख वदीके, रथ जाता है तीर नदी के।
मीना गूजर सब ही आते, नाच-कूद सब चित्त उमगाते।।
स्वामी तुमने प्रेम निभाया, ग्वाले का तुम मान बढ़ाया।
हाथ लगे ग्वाले का जब ही, स्वामी रथ चलता है तब ही।।
मेरी है टूटी सी नैया, तुम बिन कोई नहीं खिवैया।
मुझ पर स्वामी जरा कृपा कर, मैं हूँ प्रभु तुम्हारा चाकर।।
तुम से मैं अरु कछु नहीं चाहूँ, जन्म-जन्म तेरे दर्शन पाऊँ।
चालीसे को 'चन्द्र' बनावे, वीर प्रभु को शीश नमावे।।

।।सोरठा।।

नित चालीसहिं बार, पाठ करे चालीस दिन।
खेय सुगन्ध अपार, वर्धमान के सामने।।
होय कुबेर समान, जन्म दरिद्री होय जो।
जिसके नहिं सन्तान, नाम वंश जग में चले।।

जाप - ऊँ ह्रीं अर्हं श्री महावीर जिनेन्द्राय नमः।

✦ ✦ ✦

विराग चालीसा

श्रीमती किरण जैन (बोथरा), छत्तीसगढ़

वीतरागी निर्ग्रंथ का, सदा धरूँ मैं ध्यान।
जिनवाणी के लाड़ले, महिमा जिनकी महान।।
राग-द्वेष से दूर हैं, सबमें करूणा समान।।
मुझे तारो भव सिंधु से, दो ऐसा वरदान।।

विराग सागर जी नाम तुम्हारा, भक्तों को लगता है प्यारा।
छोड़ा राग जगत का जिसने, किया जगत का जो उद्धारा।।
ग्राम पथरिया जन्म लिया है, मनुज जन्म को धन्य किया है।
माँ श्यामा के आँख के तारे, कपूर चंद जी को प्राण से प्यारे।।
2 मई की शुभ घड़ी आई, जन्म लिया गुरु बाजे बधाई।
उम्र वर्ष 17 की आई, झूठी दुनियाँ मन को न भाई।।
बचपन से ही वैरागी थे, धर्म ध्यान में रत रहते थे।
हर शंका का समाधान था, जिनवाणी से तुम्हें प्यार था।
बुढ़ार में सन्मति सागर जी से, तुमने क्षुल्लक दीक्षा पाई।
पूर्ण सागर क्षुल्लक कहलाये, सन् 80 में दुर्ग में आये।।
त्याग तपस्या चरम सीमा पर, छत्तीसगढ़ के मन को भाया।
शास्त्रों के गुरु तुम हो ज्ञाता, मोक्ष मार्ग से जोड़ा नाता।।
कर्म उदय फिर ऐसा आया, रोग तपेदिक गुरु पर छाया।
भांति-भांति के लोग हैं आकर, क्षुल्लक जी को गये समझाकर।।
पीड़ा तुम्हारी देखी न जाती, दीक्षा छेदन कर लो भगवन्।
लेऊँ समाधी दीक्षा न छोड़ूँ, रत्नत्रय से मुँह ना मोड़ूँ।।
कर्म राज भी हार गये तब, माथा टेका गुरु चरणों में।
पूर्ण स्वस्थ हो गये गुरु जी, चारों दिशायें लगी थी हँसने।।
शुभ मंगल शुभ अवसर आया, सन् 83 महावीर को भाया।

निमित्त ज्ञानी श्री विमल सागर जी से, दुर्लभ मुनि दीक्षा है पाया।।
धन्य-धन्य औरंगाबाद है, पास में ही कचनेर ग्राम है।
चिंतामणी श्री पार्श्वप्रभु से, मिला गुरु को आशीर्वाद था।।
नाम विराग सागर कहलाया, प्रेम से बोलो सब जयकारा।
जुग-जुग जियो गुरु जी हमारे, तुमको लागे उमर हमारा।।
धर्म प्रभावना आपने की है, कई भव्यों को दीक्षा दी है।
जिनशासन के तुम नायक हो, मुक्ति पुरी के तुम दायक हो।।
तीर्थों का उद्धार कराया, रोग शोक को दूर भगाया।
चाहे कैसी कठिन घड़ी हो, उपसर्गों में तुम जीते हो।।
हर घड़ी हर पल हँसते हो, उपसर्ग विजेता तभी कहाये।
उपसर्ग तुम्हारा हमने देखा है, पार्श्व-नाथ फिर नाम दिया है।।
आपके संघ की महिमा भारी, पिता छोटा और पुत्र बड़ा है।
वृद्ध-वृद्ध संतों को रखते, सेवा गुरु जी सबकी करते।।
मरण समाधि में परम सहायक, समाधि विज्ञ गुरु तुम कहलाते।
मरण समय तुम पास हो मेरे, मैं भी कृत्य-कृत्य हो जाऊँ।।
मैं तुमको क्या दे सकती हूँ, तुमको मेरी उम्र है लागे।
जिस दिन आऊँ काम तुम्हारे, भाग्य मेरा उस दिन है जागे।।
जब तक सूरज चाँद रहेगा, गुरुवर तेरा नाम रहेगा।
दोनों हाथों से आशीर्वाद दो, गुरु चरणों में स्थान रहेगा।।
चालीसा को हम सब गाये, गुरु विराग सागर जी को शीश झुकाये।

अंत में गुरु देव से माँगू मैं तो आज।
भूल चूक सब माफ कर मुझे करो भव पार।।
आप हाथ मुझ शीश पर गुरु चरणों में माथ।
मन मंदिर के देवता तेरे दिल में बसा ले आज।।

* * *

स्वरुप सम्बोधन

(श्री अकलंक देव विरचित)

मुक्ता मुक्तैकरूपो यः, कर्मभिः संविदादिना।
अक्षयं परमात्मानं, ज्ञानमूर्तिं नमामि तम्।।1।।

सोऽस्त्यात्मा सोपयोगोऽयं, क्रमाद्धेतु फलावहः।
यो ग्राह्योऽग्राह्य नाद्यनन्तः, स्थित्युत्पत्ति व्ययात्मकः।।2।।
प्रमेयत्वादिभिर्धर्मैरचिदात्मा चिदात्मकः।
ज्ञान दर्शन तस्तस्माच्चेतना चेतनात्मकः।।3।।
ज्ञानाद्भिन्नो न चाभिन्नो, भिन्नाभिन्नः कथंचन।
ज्ञानं पूर्वापरीभूतं, सोऽयमात्मेति कीर्तितः।।4।।
स्वदेह प्रमितश्चायं, ज्ञानमात्रोऽपि नैव सः।
ततः सर्वगतश्चायं, विश्वव्यापी न सर्वथा।।5।।
नानाज्ञान स्वभावत्वादेकोऽनेकोऽपि नैव सः।
चेतनैकस्वभावत्वादेकानेकात्मको भवेत्।।6।।
नावक्तव्यः स्वरूपाद्यैर्निर्वाच्यः परभावतः।
तस्मान्नैकान्ततो वाच्यो, नापि वाचा मगोचरः।।7।।
स स्याद्विधि निषेधात्मा, स्वधर्मपरधर्मयोः।
समूर्तिबोध मूर्तित्वा दमूर्तिश्च विपर्ययात्।।8।।
इत्याद्यनेक धर्मत्वं, बन्धमोक्षौ तयोः फलम्।
आत्मा स्वीकुरुते, तत्तत्कारणैः स्वयमेव तु।।9।।
कर्त्ता यः कर्मणां भोक्ता तत्फलानां स एव तु
बहिरन्तरुपायाभ्यां, तेषां मुक्तत्वमेव हि।।10।।
सद्दृष्टि ज्ञान चारित्र मुपायः स्वात्म लब्धये।
तत्वे याथात्म्य संस्थित्य मात्मनो दर्शनं मतम्।।11।।
यथावद्वस्तु निर्णीतिः सम्यग्ज्ञानं प्रदीपवत्।
तत्स्वार्थ व्यवसायात्म, कथंचित् प्रमितेः पृथक्।।12।।

दर्शन ज्ञान पर्यायेषूत्तरोत्तर भाविषु।
स्थिर मालम्बनं यद्वा, माध्यस्थ्यं सुख दुःखयोः।।13।।
ज्ञाता दृष्टाऽहमेकोऽहं, सुखे दुःखे न चापरः।
इतीदं भावनादार्ढ्यं, चारित्र मथवा परम्।14।।
तदेतन्मूलहेतोः स्यात्कारणम् सहकारकम्।
यद्बाह्यं देशकालादि, तपश्च बहिरङ्गकम्।।15।।
इतीदं सर्वमालोच्य, सौस्थ्ये दौःस्थ्ये च शक्तितः।
आत्मानं भावयेन्नित्यं, रागद्वेष विवर्जितम्।।16।।
कषायैः रंजितं चेतस्तत्वं नैवावगाहते।
नीली रक्तेऽम्बरे रागो, दुराधेयो हि कौंकुमः।।17।।
ततस्त्वं दोषनिर्मुक्त्यै निर्मोहो भव सर्वतः।
उदासीनत्वमाश्रित्य, तत्वचिन्तापरो भव।।18।।
हेयोपादेय तत्वस्य, स्थितिं विज्ञाय हेयतः।
निरालम्बो भवान्यस्मादुपेये साव लम्बनः।।19।।
स्वं परं चेति वस्तु त्वं, वस्तु रूपेण भावय।
उपेक्षा भावनोत्कर्ष पर्यन्ते शिव माप्नुहि।।20।।
यस्य मोक्षेऽपि नाकाङ्क्षा स मोक्ष मधि गच्छति।
इत्युक्तत्वाद् हितान्वेषी काङ्क्षां न क्वापि योजयेत्।।21।।
सापि च स्वात्म निष्ठत्वात्सुलभा यदि चिन्त्यते।
आत्माधीने सुखे तात, यत्नं किं न करिष्यसि।।22।।
स्वं परं विद्धि तत्रापि, व्यामोहं छिन्धि कित्विमम्।
अनाकुल स्वसंवेद्ये, स्वरुपे तिष्ठ केवले।।23।।
स्वः स्वं स्वेन स्थितं स्वस्मै स्वस्मात्स्वस्या विनश्वरम्।
स्वस्मिन् ध्यात्वा लभेत् स्वोत्थ मानन्दा मामृतं पदम्।।24।।
इति स्वतत्वं परिभाव्य वाङ्मयम्, य एतदाख्याति शृणोति चादरात्।
करोति तस्मै परमार्थ सम्पदम्, स्वरुपसम्बोधन पंच विंशतिः।।25।।

✦ ✦ ✦

देवागम स्तोत्र

आप्तमीमांसा

(समन्तभद्रस्वामिविरचित)

देवागम न भोयान - चामरादि - विभूतयः।
माया विष्वपि दृश्यन्ते नातस्त्वमसि नो महान्।।1।।

अध्यात्मं बहि रप्येष विग्रहादि महोदयः।
दिव्यः सत्यो दिवौकस्स्व प्यस्ति रागादि मत्सु सः।।2।।

तीर्थकृत्समयानां च परस्पर-विरोधातः।
सर्वेषा माप्तता नास्ति कश्चिदेव भवेद् गुरुः।।3।।

दोषावरण योर्हानि-र्निःशेषाऽस्त्यतिशायनात्।
क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षयः।।4।।

सूक्ष्मान्तरित दूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्य चिद्यथा।
अनुमेयत्व तोऽग्न्यादि रिति सर्वज्ञ संस्थितिः।।5।।

स त्वमेवासि निर्दोषो युक्ति शास्त्राऽविरोधिवाक्।
अविरोधो यदिष्टं ते प्रसिद्धेन न बाध्यते।।6।।

त्वन्मतामृत बाह्यानां सर्वथै कान्त वादिनाम्।
आप्ताभि मान दग्धानां स्वेष्टं दृष्टेन बाध्यते।।7।।

कुशला कुशलं कर्म परलोकश्च न क्वचित्।
एकान्त ग्रह रक्तेषु नाथ! स्व पर वैरिषु।।8।।

भावैकान्ते पदार्थाना मभा वाना मपह्नवात्।
सर्वात्मक-मनाद्यन्त-मस्वरूप-मतावकम्।।9।।

कार्यद्रव्यमनादि स्यात्प्रागभावस्य निह्नवे।
प्रध्वंसस्य च धर्मस्य प्रच्यवेऽनन्ततां ब्रजेत्।।10।।

सर्वात्मकं तदेकं स्या दन्यापोह व्यतिक्रमे।
अन्यत्र समवायेन व्यप दिश्येत सर्वथा।।11।।

अभावैकान्त पक्षेऽपि भावा पह्नव वादिनाम्
बोधवाक्यं प्रमाणं न केन साधन दूषणम्।।12।।
विरोधान्नो भयैकात्म्यं स्याद्वाद न्याय विद्विषाम्।
अवाच्यतैकंत्येऽप्युक्तिर्नाऽवाच्यमिति युज्यते।।13।।
कथंचिते सदेवेष्टं कथंचि दसदेव तत्।
तथोभय मवाच्यं च नय योगान्न सर्वथा।।14।।
सदेव सर्व को नेच्छे्त स्वरूपादि चतुष्टयात्।
असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते।।15।।
क्रमार्पित द्वयाद् द्वैतं सहावाच्य मशक्तितः।
अवक्तव्योत्तराः शेषास्त्रयो भङ्गाः स्वहेतुतः।।16।।
अस्तित्वं प्रतिषेध्येनाऽविनाभाव्येक धर्मिणि।
विशेषणत्वात्साधर्म्यं तथा भेद विवक्षया।।17।।
नास्तित्वं प्रतिषेध्येनाऽविनाभाव्येक धर्मिणि।
विशेषणत्वा द्वैधर्म्यं यथाऽभेद विवक्षया।।18।।
विधेय प्रतिषे ध्यात्मा विशेष्यः शब्द गोचरः।
साध्य धर्मो यथा हेतु रहेतुश्च चाप्य पेक्षया।।19।।
शेष भङ्गाश्च नेतव्या यथोक्त नय योगतः
न च कश्चिद्विरोधोऽस्ति मुनीन्द्र तव शासने।।20।।
एवं विधि निषेधाभ्या मनवस्थित मर्थकृत्।
नेति चेन्न यथाकार्यं बहिरन्त-रूपाधिभिः।।21।।
धर्मे धर्मेऽन्य एवार्थो धर्मिणोऽनन्त धर्मणः।
अङ्गित्वेऽन्यत मान्तस्य शेषान्तानां तदङ्गता।।22।।
एकानेक विकल्पादा वुत्त रत्राऽपि योजयेत्।
प्रक्रियां भङ्गिनी मेनां नयै र्नय विशारदः।।23।।
अद्वैतैकान्त पक्षेऽपि दृष्टो भेदो विरुध्यते।
कारकाणां क्रियायाश्च नैकं स्वस्मात्प्रजायते।।24।।

कर्मद्वैतं फलद्वैतं लोकद्वैतं च नो भवेत्।
विद्याऽविद्या द्वयं न स्यात् बन्धमोक्षद्वयं तथा।।25।।
हेतो रद्वैत सिद्धिश्चेद् द्वैतं स्याद्धेतु साध्ययोः।
हेतुना चेद्विना सिद्धिर्द्वैतं वाङ्मात्रतो न किम्।।26।।
अद्वैतं न विना द्वैता दहेतुरिव हेतुना।
संज्ञिनः प्रतिषेधो न प्रतिषेध्या दृते क्वचित्।।27।।
पृथक्त्वैकान्त पक्षेऽपि पृथकत्वा दपृथक्कृतौ।
पृथक्त्वे न पृथक्त्वं स्या दनेकस्थो ह्यसौ गुणः।।28।।
सन्तानः समुदायश्च साधर्म्यं च निरङ्कुशः।
प्रेत्य भावश्च तत्सर्वं न स्या देकत्व निह्नवे।।29।।
सदात्मना च भिन्नं चेत् ज्ञानं ज्ञेयाद् द्विधाऽप्यसत्।
ज्ञानाभावे कथं ज्ञेयं बहिरन्तश्च ते द्विषाम्।।30।।
सामान्यार्था गिरोऽन्येषां विशेषो नाभि लप्यते।
सामान्य भावतस्तेषां मृषैव सकला गिरः।।31।।
विरोधान्नो भयैकात्म्यं स्याद्वाद न्याय विद्विषाम्।
अवाच्यतै कान्तेऽप्युक्ति र्नावाच्य मिति युज्यते।।32।।
अनपेक्षे पृथक्त्वैक्ये ह्यवस्तु द्वय हेतुतः।
तदे वैक्यं पृथक्त्वं च स्वभेदैः साधनं यथा।।33।।
सत्सामान्यात्तु सर्वैक्यं पृथक् द्रव्या दिभेदतः।
भेदाभेद-विवक्षाया-मसाधारण-हेतुवत्।।34।।
विवक्षा चाऽविवक्षा च विशेष्येऽनन्तधर्मिणि।
सतो विशेषणस्यात्र नासतस्तैस्तदर्थिभिः।।35।।
प्रमाण गोचरौ सन्तौ भेदाभेदौ न संवृती।
तावे कत्रा विरुद्धौ ते गुण मुख्य विवक्षया।।36।।
नित्यत्वै कान्त पक्षेऽपि विक्रिया नोप पद्यते।
प्रागेव कारका भावः क्व प्रमाणं क्व तत्फलम्।।37।।

प्रमाण कारकै र्व्यक्तं व्यक्तं चेदिन्द्रियार्थ वत्।
ते च नित्ये विकार्यं किं साधोस्ते शासनाद् बहिः।।38।।
यदि सत्सर्वथा कार्यं पुंवन्नोत्पत्तु मर्हति।
परिणाम प्रक्लृप्तिश्च नित्यत्वै कान्त बाधिनी।।39।।
पुण्य पाप क्रिया न स्यात् प्रेत्यभावः फलं कुतः।
बन्ध मोक्षौ च तेषां न येषां त्वं नासि नायकः।।40।।
क्षणिकैकान्तपक्षेऽपि प्रेत्य भावाद्य सम्भवः।
प्रत्यभि ज्ञाद्य भावान्न कार्या रम्भः कुतः फलम्।।41।।
य द्यसत्सर्वथा कार्यं तन्माजनि ख पुष्पवत्।
मोपादान-नियामौभून्माऽऽश्वासः कार्य जन्मनि।।42।।
न हेतुफल भावादि रन्यभावा दनन्वयात्।
सन्तानान्तर वन्नैकः सन्तानस्त द्वतः पृथक्।।43।।
अन्येष्वनन्य शब्दोऽयं संवृति र्न मृषा कथम्।
मुख्यार्थः संवृति र्नास्ति बिना मुख्यान्न संवृतिः।।44।।
चतुष्कोटे र्विकल्पस्य सर्वान्ते षूक्त्य योगतः।
तत्त्वान्यत्व मवाच्यं चेत्तयोः सन्तान तद्वतोः।।45।।
अवक्तव्य चतुष्कोटि विकल्पोऽपि न कथ्यताम्।
असर्वान्त मवस्तु स्या दविशेष्य विशेषणम्।।46।।
द्रव्या द्यन्त रभावेन निषेधः संज्ञिनः सतः।
असद्भेदो न भावस्तु स्थानं विधि निषेधयोः।।47।।
अवस्त्व नभिलाप्यं स्यात् सर्वान्तैः परि वर्जितम्।
वस्त्वेवा वस्तुतां याति प्रक्रियाया विपर्ययात्।।48।।
सर्वान्ताश्चे दवक्त व्यास्तेषां किं वचनं पुनः।
संवृतिश्च चेन्मृषै वैषा परमार्थ विपर्ययात्।।49।।
अशक्यत्वा दवाच्यं कि मभावात्कि मबोधतः।
आद्यन्तोक्ति द्वयं न स्यात् किं व्याजे नोच्यतां स्फुटम्।।50।।

हिनस्त्य नभि सन्धातृ न हिनस्त्यभि सन्धिमत्।
बद्धयते तद् द्वयापेतं चित्तं बद्धं न मुच्यते।।51।।
अहेतु कत्वान्नाशस्य हिंसा हेतुर्न हिंसकः।
चित्त सन्तति नाशश्च मोक्षो नाष्टाङ्ग हेतुकः।।52।
विरूप कार्यारम्भाय यदि हेतु समागमः।
आश्रयिभ्या मनन्योऽसा वविशेषा दयुक्तवत्।।53।।
स्कन्धाः सन्त तयश्चैव संवृतित्वा दसंस्कृताः।
स्थित्युत्पत्ति व्ययास्तेषां न स्युः ख रविषाणवत्।।54।।
विरोधान्नो भयैकात्म्यं स्याद्वाद न्याय विद्विषाम्।
अवाच्यतै कान्तेऽप्युक्ति र्नावाच्य मिति युज्यते।।55।।
नित्यं तत् प्रत्यभि ज्ञानान्नाकस्मात्तदविच्छिदा।
क्षणिकं कालभेदात्ते बुद्धय संचर दोषतः।।56।।
न सामान्यात्मनोदेति न व्येति व्यक्त मन्वयात्।
व्येत्युदेति विशेषात्ते सहै कत्रोदयादि सत्।।57।।
कार्योत्पादः क्षयो हेतोर्नियमाल्लक्षणात्पृथक्।
न तौ जात्याद्यवस्थाना दनपेक्षाः ख पुष्पवत्।।58।।
घट मौलि सुवर्णार्थी नाशोत्पाद स्थितिष्वयम्।
शोक प्रमोद माध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम्।।59।।
पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोऽत्ति दधिव्रतः।
अगो रसव्रतो नोभे तस्मात्तत्त्वं त्रयात्मकम्।।60।।
कार्य कारण नानात्वं गुण गुण्यन्य ताऽपि च।
सामान्य तद्वदन्यत्वं चैकान्तेन यदीष्यते।।61।।
एकस्या नेक वृत्तिर्न भागा भावाद् वहूनि वा।
भागित्वा द्वास्य नैकत्वं दोषो वृत्ते रनार्हते।।62।।
देशकाल विशेषेऽपि स्याद् वृत्ति र्युत सिद्धवत्।
समान देशता न स्यात् मूर्त कारण कार्ययोः।।63।।

आश्रयाश्रयि भावान्न स्वातन्त्र्यं सम वायिनाम्।
इत्य युक्तः स सम्बन्धो न युक्तः समवायिभिः।।64।।
सामान्यं समवायश्चा प्येकैकत्र समाप्तितः।
अन्तरेणा श्रयं न स्यान्नाशोत्पादिषु को विधिः।।65।।
सर्वथाऽनभि सम्बन्धः सामान्य समवाययोः।
ताभ्यामर्थो न सम्बद्धस्तानि त्रीणि खपुष्पवत्।।66।।
अनन्यतै कान्तेऽणूनां सङ्घातेऽपि विभागवत्।
असंहतत्वं स्याद् भूत चतुष्कं भ्रान्तिरेव सा।।67।।
कार्य भ्रान्तेरणु भ्रान्तिः कार्यलिङ्गं हि कारणम्।
उभया भाव तस्तत्स्थं गुण जाती तरच्च न।।68।।
एकत्वेऽन्यतरा भावः शेषा भावोऽविनाभुवः।
द्वित्व संख्या विरोधश्च संवृत्तिश चेन्मृषैव सा।।69।।
विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वाद न्याय विद्विषाम्।
अवाच्यतै कान्तेऽप्युक्ति र्नावाच्य मिति युज्यते।।70।।
द्रव्य पर्याययो रैक्यं तयो रव्यति रेकतः।
परिणाम विशेषाच्च शक्ति मच्छक्ति भावतः।।71।।
संज्ञा संख्या विशेषाच्च स्वलक्षण विशेषतः।
प्रयोजनादि भेदाच्च तन्नानात्वं न सर्वथा।।72।।
यद्या पेक्षिक सिद्धिः स्यान्न द्वयं व्यव तिष्ठते।
अनापेक्षिक सिद्धौ च न सामान्य विशेषता।।73।।
विरोधान्नो भयैकात्म्यं स्याद्वाद न्याय विद्विषाम्।
अवाच्यतै कान्तेऽप्युक्ति र्ना वाच्यमिति युज्यते।।74।।
धर्मधर्म्य विनाभावः सिद्धयत्यन्योऽन्य वीक्षया।
न स्वरूपं स्वतो ह्येतत् कारक ज्ञाप काङ्गवत्।।75।।
सिद्धं चेद्धेतुतः सर्वं न प्रत्यक्षा दितो गतिः।
सिद्धं चेदा गमात्सर्वं विरुद्धार्थ मतान्यपि।।76।।

विरोधान्नौभयैकात्म्यं स्याद्वाद न्याय विद्विषाम्।
अवाच्यतै कान्तेऽप्युक्ति र्ना वाच्यमिति युज्यते।।77।।
वक्त र्यनाप्ते यद्धेतोः साध्यं तद्धेतु साधितम्।
आप्ते वक्तरि तद्वाक्यात् साध्य मागम साधितम्।।78।।
अन्तरङ्गार्थ तैकान्ते बुद्धि वाक्यं मृषाऽखिलम्।
प्रमाणा भास मेवा तस्तत्प्रमाणा दृते कथम्।।79।।
साध्य साधन विज्ञप्ते र्यदि विज्ञप्ति मात्रता।
न साध्यं न च हेतुश्च प्रतिज्ञा हेतु दोषतः।।80।।
बहिरङ्गार्थ तैकान्तै प्रमाणा भास निह्नवात्।
सर्वेषां कार्यसिद्धिः स्याद्विरुद्धार्था भिधायिनाम्।।81।।
विरोधान्नोभयै कात्म्यं स्याद्वाद न्याय विद्विषाम्।
अवाच्यतै कान्तेऽप्युक्ति र्ना वाच्यमिति युज्यते।।82।।
भाव प्रमेया पेक्षायां प्रमाणा भास निह्नवः।
बहिः प्रमेया पेक्षायां प्रमाणं तन्निभं च ते।।83।।
जीव शब्दः सबाह्यार्थः संज्ञात्वाद्धेतु शब्दवत्।
मायादि भ्रान्ति संज्ञाश्च मायाद्यैः स्वैः प्रमोक्ति वत्।।84।।
बुद्धि शब्दार्थ संज्ञास्तास्तिस्रो बुद्धयादि वाचिकाः।
तुल्या बुद्धयादि बोधाश्च त्रयस्तत्प्रतिबिम्बकाः।।85।।
वक्तृश्रोतृ प्रमातृणां बोध वाक्यप्रमाः पृथक्।
भ्रान्तावेव प्रमा भ्रान्तौ बाह्यार्थौ तादृ शेतरौ।।86।।
बुद्धि शब्द प्रमाणत्वं बाह्यार्थे सति नाऽसति।
सत्यानृत व्यवस्थैवं युज्यतेऽर्थाप्त्य नाप्तिषु।।87।।
दैवा देवार्थ सिद्धिश्चेद् दैवं पौरुषतः कथम्।
दैवतश्च चेद् निर्मोक्षः पौरुषं निष्फलं भवेत्।।88।।
पौरुषादेव सिद्धिश्चेत् पौरुषं दैवतः कथम्।
पौरुषाच्चेदमोघं स्यात् सर्व प्राणिषु पौरुषम्।।89।।
विरोधान्नौ भयैकात्म्यं स्याद्वाद न्याय विद्विषाम्।

अवाच्यतै कान्तेऽप्युक्ति र्नावाच्य मिति युज्यते।।90।।
अबुद्धि पूर्वा पेक्षाया मिष्टा निष्टं स्वदैवतः।
बुद्धि पूर्व व्यपेक्षाया मिष्टा निष्टं स्व पौरुषात्।।91।।
पापं ध्रुवं परे दुःखात् पुण्यं च सुखतो यदि।
अचेतना कषायौ च बध्ये यातां निमित्ततः।।92।।
पुण्यं ध्रुवं स्वतो दुःखात्पापं च सुखतो यदि।
वीतरागो मुनि र्विद्वांस्ताभ्यां युंजयान्निमित्ततः।।93।।
विरोधान्नो भयैकात्म्यं स्याद्वाद न्याय विद्विषाम्।
अवाच्यतै कान्तेऽप्युक्ति र्नावाच्य मिति युज्यते।।94।।
विशुद्धि संक्लेशाङ्ग चेत् स्वपरस्थं सुखासुखम्।
पुण्य पापास्रवौ युक्तौ न चेद्वयर्थस्त तवार्हतः।।95।।
अज्ञानाच्चेद् ध्रुवो बन्धो ज्ञेयानन्त्यान्न केवली।
ज्ञानस्तोकाद्विमोक्षश्चे दज्ञानाद् वहुतोऽन्यथा।।96।।
विरोधान्नो भयैकात्म्यं स्याद्वाद न्याय विद्विषाम्।
अवाच्यतै कान्तेऽप्युक्ति र्नावाच्य मिति युज्यते।।97।।
अज्ञानान्मोहतो बन्धो नाज्ञाना द्वीतमोहतः।
ज्ञानस्तोकाच्च मोक्षः स्या दमोहान्मोहितोऽन्यथा।।98।।
कामादि प्रभ वश्चित्रः कर्म बन्धानु रूपतः।
तच्च कर्म स्वहेतुभ्यो जीवास्ते शुद्ध्य शुद्धितः।।99।।
शुद्धय शुद्धीपुनः शक्ति ते पाक्यापाक्य शक्तिवत्।
साद्यनादी तयो र्व्यक्ती स्वभावोऽतर्क गोचरः।।100।।
तत्त्वज्ञानं प्रमाणं ते युगपत्सर्व भासनम्।
क्रमभावि च यज्ज्ञानं स्याद्वाद नयसंस्कृतम्।।101।।
उपेक्षा फलमाद्यस्य शेषस्या दान हानधीः।
पूर्वं वाऽज्ञान नाशो वा सर्वस्यास्य स्वगोचरे।।102।।
वाक्येष्व नेकान्तद्योती गम्यंप्रति विशेषक।
स्यान्निपातोऽर्थयोगित्वा त्तव केवलि नामपि।।103।।

स्याद्वादः सर्वथै कान्त त्यागात्किंवृत्त चिद्विधिः।
सप्त भङ्ग नया पेक्षो हेयादेय विशेषकः।।104।।
स्याद्वाद केवलज्ञाने सर्व तत्त्व प्रकाशने।
भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत्।।105।।
सधर्मणैव साध्यस्य साधर्म्या दविरोधतः।
स्याद्वाद प्रविभक्तार्थ विशेषव्यंजको नयः।।106।।
नयोप नयै कान्तानां त्रिकालानां समुच्चयः।
अविभ्राट् भावसम्बन्धो द्रव्यमेक मनेकधा।।107।।
मिथ्यासमूहो मिथ्या चेन्न मिथ्यै कान्त तास्ति नः।
निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत।।108।।
नियम्यतेऽर्थो वाक्येन विधिना वारणेन वा।
तथाऽन्यथा च सोऽवश्य मविशेष्यत्व मन्यथा।।109।।
तद तद्वस्तु वागेषा तदे वेत्यनु शासति।
न सत्या स्यान्मृषा वाक्यैः कथं तत्त्वार्थ देशना।।110।।
वाक्स्वभावोऽन्य वागर्थ प्रतिषेध निरङ्कुशः।
आह च स्वार्थ सामान्यं तादृग्वाच्यं ख पुष्पवत्।।111।।
सामान्यवाग्विशेषे चेन्न शब्दार्थो मृषा हि सा।
अभिप्रेत विशेषाप्तेः स्यात्कारः सत्यलांछनः।।112।।
विधेय मीप्सितार्थाङ्गं प्रतिषेध्या विरोधि यत्।
तथैवादेय हेयत्वमिति स्याद्वाद संस्थितिः।।113।।
इतीय माप्त मीमांसा विहिता हित मिच्छताम्।
सम्यग्मिथ्योपदेशार्थ विशेष प्रतिपत्तये।।114।।
जयति जगति क्लेशा वेश प्रपंच हिमांशुमान्।
विहतविषमैकान्तध्वान्त प्रमाण नयांशुमान्।
यति पतिरजो यस्या धृष्टान्मताम्बु निधेर्लवान्।
स्वमत यस्तीर्थ्या नाना परे समुपासते।।115।।

(इति श्री आप्त मीमांसा)

समाधितन्त्रम्

(श्रीमद्देवनन्द्यपरनाम पूज्यपाद स्वामिविरचित)

येनात्माऽबुद्ध्यतात्मैव परत्वे नैव चापरम्।
अक्षयानन्त बोधाय तस्मै सिद्धात्मने नमः।।1।।

जयन्ति यस्यावदतोऽपि भारती, विभूतयस्तीर्थकृतोप्यनीहितुः।
शिवाय धात्रे सुगताय विष्णवे, जिनाय तस्मै सकलात्मने नमः।।2।।

श्रुतेन लिंगेन यथात्मशक्ति समाहितान्तः करणेन सम्यक्।
समीक्ष्य कैवल्य सुखस्पृहाणां विविक्त मात्मान मथाभिधास्ये।।3।।

बहिरन्तः परश्चेति त्रिधात्मा सर्व देहिषु।
उपेयात्तत्र परमं मध्योपायाद्बहिस्त्यजेत्।।4।।

बहिरात्मा शरीरादौ जातात्म भ्रान्ति रान्तरः।
चित्तदोषात्म विभ्रान्तिः परमात्माऽति निर्मलः।।5।।

निर्मलः केवलः शुद्धो विविक्तः प्रभु रव्ययः।
परमेष्ठी परात्मेति परमात्मेश्वरो जिनः।।6।।

बहिरात्मेन्द्रिय द्वारै रात्मज्ञान पराङ्मुखः।
स्फुरितः स्वात्मनो देह मात्मत्वे नाध्य वश्यति।।7।।

नरदेहस्थ मात्मान मविद्वान् मन्यते नरम्।
तिर्यंच तिर्यगंङ्गस्थं सुरांगस्थं सुरं तथा।।8।।

नारकं नारकाङ्गस्थं न स्वयं तत्त्व तस्तथा।
अनंतानंत धी शक्तिः स्वसंवेद्योऽचलस्थितिः।।9।।

स्वदेह सदृशं दृष्ट्वा परदेह मचेतनम्।
परात्माधिष्ठितं मूढः परत्वे नाध्य वस्यति।।10।।

स्वपरा ध्यवसायेन देहेष्व विदितात्मनाम्।
वर्तते विभ्रमः पुंसां पुत्र भार्यादिगोचरः।।11।।
अविद्यासंज्ञितस्तस्मात्संस्कारो जायते दृढः।
येन लोकोऽङ्गमेव स्वं पुनरप्यभि मन्यते।।12।।
देहे स्वबुद्धिरात्मानं युनक्त्ये तेन निश्चयात्।
स्वात्मन्ये वात्म धीस्तस्माद्वियोजयति देहिनं।।13।।
देहेष्वात्मधिया जाताः पुत्रभार्यादि कल्पनाः।
सम्पत्ति मात्मनस्ताभि र्मन्यते हा हतं! जगत्।।14।।
मूलं संसार दुःखस्य देह एवात्म धीस्ततः।
त्यक्त्वैनां प्रविशेदन्त र्बहिरव्या पृतेन्द्रियः।।15।।
मत्तश्च्युत्वेन्द्रिय द्वारैः पतितो (यतितो) विषयेष्वहम्।
तान प्रपद्याऽहमिति मां पुरा वेद न तत्त्वतः।।16।।
एवं त्यक्त्वा बहिर्वाचं त्यजेदन्तर शेषतः।
एष योगः समासेन प्रदीपः परमात्मनः।।17।।
यन्मया दृश्यते रूपं तन्न जानाति सर्वथा।
जानन्न दृश्यते रूपं ततः केन ब्रवीम्यहम्।।18।।
यत्परैः प्रतिपाद्योऽहं यत्परान् प्रतिपादये।
उन्मत्त चेष्टितं तन्मे यदहं निर्विकल्पकः।।19।।
यदग्राह्यं न गृह्णाति गृहीतं नैव मुंचति।
जानाति सर्वथा सर्वं तत्स्व संवेद्य मस्म्यहम्।।20।।
उत्पन्न पुरुष भ्रान्तेः स्थाणौ यद्वद्वि चेष्टितम्।
तद्वन्मे चेष्टितं पूर्वं देहा दिष्वात्म विभ्रमात्।।21।।
यथाऽसौ चेष्टते स्थाणौ निवृत्ते पुरुषाग्रहे।
तथा चेष्टोऽस्मि देहादौ विनिवृत्तात्म विभ्रमः।।22।।

येनात्मनाऽनु भूयेऽह मात्मनै वात्मनाऽत्मनि।
सोऽहं न तन्न सा नासौ नैको न द्वौ न वा बहुः।।23।।
यदभावे सुषुप्तोऽहं यद्भावे व्युत्थितः पुनः।
अतीन्द्रिय मनिर्देश्यं तत्स्वसंवेद्य मस्म्यहम्।।24।।
क्षीयन्तेऽत्रैव रागाद्यास्तत्त्वतो मां प्रपश्यतः।
बोधात्मानं ततः कश्चिन्न मे शत्रु र्न च प्रियः।।25।।
मा मपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न च प्रियः।
मां प्रपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न च प्रियः।।26।।
त्यक्त्वैवं बहिरात्मान मन्तरात्म व्यवस्थितः।
भावयेत्परमात्मानं सर्व संकल्प वर्जितम्।।27।।
सोऽह मित्यात्त संस्कारस्त तस्मिन् भावनया पुनः।
तत्रैव दृढ़ संस्काराल्लभते ह्यात्मनि स्थितिम्।।28।।
मूढ़ात्मा यत्र विश्वस्तस्ततो नान्यद्भयास्पदम्।
यतो भीतस्ततो नान्य दभयस्थान मात्मनः।।29।।
सर्वेन्द्रियाणि संयम्य स्तिमिते नान्तरात्मना।
यत्क्षणं पश्यतो भाति तत्तत्त्वं परमात्मनः।।30।।
यः परात्मा स एवाऽहं योऽहं स पर मस्ततः।
अहमेव मयो पास्यो नान्यः कश्चिदिति स्थितिः।।31।।
प्रच्याव्य विषयेभ्योऽहं मां मयैव मयि स्थितम्।
बोधात्मानं प्रपन्नोऽस्मि परमानन्द निर्वृतम्।।32।।
यो न वेत्ति परं देहा देव मात्मान मव्ययम्।
लभते स न निर्वाणं तप्त्वाऽपि परमं तपः।।33।।
आत्म देहान्तरज्ञान जनिताल्हाद निर्वृतः।
तपसा दुष्कृतं घोरं भुञ्जानोऽपि न खिद्यते।।34।।

रागद्वेषादि कल्लोलै रलोलं यन्मनो जलम्।
स पश्यत्यात्मनस तत्त्वं स तत्त्वं नेतरो जनः।।35।।
अविक्षिप्तं मन स्तत्त्वं विक्षिप्तं भ्रान्ति रात्मनः।
धारयेत्तदविक्षिप्तं विक्षिप्तं नाश्र येत्ततः।।36।।
अविद्याभ्यास संस्कारै रवशं क्षिप्यते मनः।
तदेव ज्ञान संस्कारैः स्वतस्तत्त्वेऽवतिष्ठते।।37।।
अपमाना दयस्तस्य विक्षेपो यस्य चेतसः।
नापमाना दयस्तस्य न क्षेपो यस्य चेतसः।।38।।
यदा मोहात्प्रजायेते रागद्वेषौ तपस्विनः।
तदैव भावयेत्स्वस्थ मात्मानं शाम्यतः क्षणात्।।39।।
यत्र काये मुनेः प्रेम ततः प्रच्याव्य देहिनम्।
बुद्धया तदुत्तमे काये योजयेत्प्रेम नश्यति।।40।।
आत्म विभ्रमजं दुःख मात्म ज्ञानात्प्रशाम्यति।
नाऽय तास्तत्र निर्वान्ति कृत्वापि परमं तपः।।41।।
शुभं शरीरं दिव्यांश्च विषया नभि वाञ्छति।
उत्पन्नाऽऽत्म मतिर्देहे तत्त्व ज्ञानी ततश्च्युतिम्।।42।।
परत्रा हम्मतिः स्वस्मा च्युतो बध्नात्य संशयम्।
स्वस्मिन्न हम्मतिश च्युत्वा परस्मान्मुच्यते बुधः।।43।।
दृश्यमानमिदं मूढस्त्रि लिङ्ग मव बुध्यते।
इद मित्य वबुद्धस्तु निष्पन्नं शब्द वर्जितम्।।44।।
जानन्नप्यात्मनस्तत्त्वं विविक्तं भाव यन्नपि।
पूर्व विभ्रम संस्काराद् भ्रांतिं भूयोऽपि गच्छति।।45।।
अचेतन मिदं दृश्य मदृश्यं चेतनं ततः।
क्व रुष्यामि क्व तुष्यामि मध्यस्थोऽहं भवाम्यतः।।46।।

त्यागादाने बहिर्मूढः करोत्य ध्यात्म मात्मवित्।
नान्तर्बहि रुपादानं न त्यागो निष्ठि तात्मनः।।47।।

युञ्जीत मनसाऽऽत्मानं वाक्का याभ्यां वियोजयेत्।
मनसा व्यवहारं तु त्यजेद्वाक्काय योजितम्।।48।।

जगद्देहात्म दृष्टीनां विश्वास्यं रम्यमेव च।
स्वात्मन्ये वात्म दृष्टीनां क्व विश्वासः क्व वा रतिः।।49।।

आत्म ज्ञानात्परं कार्यं न बुद्धौ धारयेच्चिरम्।
कुर्या दर्थ वशात्किंचिद्वाक्कायाभ्याम तत्परः।।50।।

यत्पश्यामीन्द्रियै स्तन्मे नास्ति यन्नियतेन्द्रियः।
अंतः पश्यामि सानन्दं तदस्तु ज्योति रुत्तमम्।।51।।

सुख मारब्ध योगस्य बहिर्दुःख मथाऽऽत्मनि।
बहिरेवाऽसुखं सौख्य मध्यात्मं भावि तात्मनः।।52।।

तद् ब्रूयात्तत्परान् पृच्छेत्तदिच्छेत्तत्परो भवेत्।
येनाऽविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत्।।53।।

शरीरे वाचि चात्मानं सन्धत्ते वाक् शरीरयोः।
भ्रान्तोऽभ्रान्तः पुनस्तत्त्वं पृथगेषां निबुध्यते।।54।।

न तदस्तीन्द्रि यार्थेषु यत्क्षेमङ्कर मात्मनः।
तथापि रमते बालस्तत्रैवाज्ञान भावनात्।।55।।

चिरं सुषुप्तास्तमसि मूढ़ात्मानः कुयोनिषु।
अनात्मीयात्म भूतेषु ममाह मिति जाग्रति।।56।।

पश्येन्निरंतरं देह मात्मनोऽनात्म चेतसा।
अपरात्म धियाऽन्येषा मात्म तत्त्वे व्यवस्थितः।।57।।

अज्ञापितं न जानन्ति यथा मां ज्ञापितं तथा।
मूढ़ात्मानस्ततस्तेषां वृथा मे ज्ञाप नश्रमः।।58।।

यद् बोधयितु मिच्छामि तन्नाहं यदहं पुनः।
ग्राह्यं तदपि नान्यस्य तत्कि मन्यस्य बोधये।।59।।

बहिस्तुष्यति मूढ़ात्मा पिहित ज्योति रन्तरे।
तुष्यत्यन्तः प्रबुद्धात्मा बहिर्व्यावृत्त कौतुकः।।60।।

न जानन्ति शरीराणि सुख दुःखान्य बुद्धयः।
निग्रहा नुग्रहधियं तथाप्यत्रैव कुर्वते।।61।।

स्वबुद्धया यावद् गृहणीयात् काय वाक् चेतसां त्रयम्।
संसार तावदेतेषां भेदाभ्यासे तु निर्वृतिः।।62।।

घने वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न घनं मन्यते तथा।
घने स्वदेहेप्यात्मानं न घनं मन्यते बुधः।।63।।

जीर्णे वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न जीर्णं मन्यते तथा।
जीर्णे स्वदेहेऽप्यात्मानं न जीर्णं मन्यते बुधः।।64।।

नष्टे वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न नष्टं मन्यते तथा।
नष्टे स्वदेहेऽप्यात्मानं न नष्टं मन्यते बुधः।।65।।

रक्ते वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न रक्तं मन्यते तथा।
रक्ते स्वदेहेऽऽप्यात्मानं न रक्तं मन्यते बुधः।।66।।

यस्य सस्पन्द माभाति निःस्पन्देन समं जगत्।
अप्रज्ञ मक्रियाभोगं स शमं याति नेतरः।।67।।

शरीर कंचु केनात्मा संवृत्त ज्ञान विग्रहः।
नात्मानं बुध्यते तस्माद् भ्रम त्यतिचिरं भवे।।68।।

प्रविशद् गलतां व्यूहे देहेऽणूनां समाकृतौ।
स्थिति भ्रान्त्या प्रपद्यन्ते तमात्मान मबुद्धयः।।69।।

गौरः स्थूलः कृशो वाऽह मित्यङ्गेना विशेषयन्।
आत्मानं धारयेन्नित्यं केवल ज्ञप्ति विग्रहम्।।70।।

मुक्ति रेकान्तिकी तस्य चित्ते यस्याचला धृतिः।
तस्य नैकान्तिकी मुक्ति र्यस्य नास्त्य चला धृति।।71।।

जनेभ्यो वाक्, ततः स्पन्दो मनसश्चित्त विभ्रमाः।
भवन्ति तस्मात्संसर्गं जनैर्योगी ततस्त्यजेत्।।72।।

ग्रामोऽरण्य मिति द्वेधा निवासोऽनात्म दर्शिनाम्।
दृष्टात्मनां निवासस्तु विविक्तात्मैव निश्चलः।।73।।

देहान्तर गतेर्बीजं देहेऽस्मिन्नात्म भावना।
बीजं विदेह निष्पत्ते रात्मन्ये वात्म भावना।।74।।

नयत्यात्मान मात्मैव जन्म निर्वाणमेव च।
गुरु रात्मा त्मनस्तस्मान्नान्योऽस्ति परमार्थतः।।75।।

दृढात्म बुद्धि र्देहादा वुत्पश्यन्नाश मात्मनः।
मित्रादिभि र्वियोगं च विभेति मरणाद् भृशम्।।76।।

आत्मन्ये वात्म धीरन्यां शरीर गति मात्मनः।
मन्यते निर्भयं त्यक्त्वा वस्त्रं वस्त्रांतर ग्रहम्।।77।।

व्यवहारे सुषुप्तो यः स जागर्त्यात्म गोचरे।
जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्ताश्चात्म गोचरे।।78।।

आत्मान मन्तरे दृष्ट्वा, दृष्ट्वा देहादिकं बहिः।
तयोरन्तर विज्ञानादाभ्यासा दच्युतो भवेत्।।79।।

पूर्वं दृष्टात्म तत्त्वस्य विभात्युन्मत्त वज्जगत्।
स्वभ्यस्तात्मधियः पश्चात्काष्ठ पाषाण रूपवत्।।80।।

श्रृण्वन्नप्यन्यतः कामं वदन्नपि कले वरात्।
नात्मानं भावयेद्भिन्नं यावत्तावन्न मोक्षभाक्।।81।।

तथैव भावयेद्देहाद्व्या वृत्यात्मान मात्मनि।
यथा न पुनरात्मानं देहे स्वप्नेऽपि योजयेत्।।82।।

अपुण्य मव्रतैः पुण्यं व्रतै र्मोक्षस्तयो व्ययः।
अव्रतानीव मोक्षार्थी व्रतान्यपि ततस्त्यजेत्।।83।।

अव्रतानि परित्यज्य व्रतेषु परिनिष्ठतः।
त्यजेत्तान्यपि संप्राप्य परमं पदमात्मनः।।84।।

यदन्त जर्ल्पसंपृक्त मुत्प्रेक्षा जाल मात्मनः।
मूलं दुःखस्य तन्नाशे शिष्ट मिष्टं परं पदम्।।85।।

अव्रती व्रत मादाय व्रती ज्ञान परायणः।
परात्म ज्ञानसम्पन्नः स्वयमेव परो भवेत्।।86।।

लिङ्गं देहाश्रितं दृष्टं देह एवात्मनो भवः।
न मुच्यन्ते भवात्तस्मात्ते ये लिङ्ग कृताऽऽग्रहाः।।87।।

जाति र्देहाश्रिता दृष्टा देह एवात्मनो भवः।
न मुच्यन्ते भवात्तस्मात्ते ये जातिकृताग्रहाः।।88।।

जाति लिंग विकल्पेन येषां च समयाग्रहः।
तेऽपि न प्राप्नु वन्त्येव परमं पद मात्मनः।।89।।

यत्त्यागाय निवर्तन्ते भोगेभ्यो यद वाप्तये।
प्रीतिं तत्रैव कुर्वन्ति द्वेष मन्यत्र मोहिनः।।90।।

अनन्त रज्ञः संधत्ते दृष्टिं पंगो र्यथाऽन्धके।
संयोगात् दृष्टि मङ्गेऽपि संधत्ते तद्व दात्मनः।।91।।

दृष्टभेदो यथा दृष्टिं पङ्गो रन्धे न योजयेत्।
तथा न योजयेद्देहे दृष्टात्मा दृष्टि मात्मनः।।92।।

सुप्तोन्मत्ताद्य वस्थैव विभ्रमोऽनात्म दर्शिनाम्।
विभ्रमोऽक्षीण दोषस्य सर्वा वस्थाऽऽत्म दर्शिनः।।93।।

विदिता शेष शास्त्रोऽपि न जाग्रदपि मुच्यते।
देहात्म दृष्टि र्ज्ञातात्मा सुप्तोन्मत्तोऽपि मुच्यते।।94।।

यत्रै वाहितधीः पुंसः श्रद्धा तत्रैव जायते।
यत्रैव जायते श्रद्धा चित्तं तत्रैव लीयते।।95।।

यत्रा नाहितधीः पुंसः श्रद्धा तस्मान्निवर्तते।
यस्मान्निवर्तते श्रद्धा कुतश्चित्तस्य तल्लयः।।96।।

भिन्नात्मान मुपास्यात्मा परो भवति तादृशः।
वर्तिदीपं यथोपास्य भिन्ना भवति तादृशी।।97।।

उपास्यात्मान मेवात्मा जायते परमोऽथवा।
मथित्वाऽऽत्मान मात्मैव जायतेऽग्नि र्यथा तरु।।98।।

इतीदं भावयेन्नित्य मवाचांगोचरं पदम्।
स्वत एव तदाप्नोति यतो नावर्तते पुनः।।99।।

अयत्न साध्यं निर्वाणं चित्तत्वं भूतजं यदि।
अन्यथा योग तस्तस्मान् नदुःखं योगिनां क्वचित्।।100।।

स्वप्ने दृष्टे विनष्टेऽपि न नाशोऽस्ति यथात्मनः।
तथा जागर दृष्टेऽपि विपर्यासा विशेषतः।।101।।

अदुःख भावितं ज्ञानं क्षीयते दुःख सन्निधौ।
तस्माद्यथा बलं दुःखै रात्मानं भावयेन्मुनिः।।102।।

प्रयत्ना दात्मनो वायुरिच्छा द्वेष प्रवर्तितात्।
वायोः शरीर यंत्राणि वर्तन्ते स्वेषु कर्मसु।।103।।

तान्यात्मनि समारोप्य साक्षाण्यास्तेऽसुखं जडः।
त्यक्त्वाऽरोपं पुनि र्विद्वान् प्राप्नोति परमं पदम्।।104।।

मुक्त्वा परत्र परबुद्धि महंधियं च,
संसार-दुःखजननी जननाद्विमुक्तः।
ज्योति र्मयं सुखमुपैति परात्म निष्ठ-
स्तन्मार्ग मेतदधि गम्य समाधितंत्रम्।।105।।

इति समाधि तंत्रम्

✦ ✦ ✦

अनुप्रेक्षा

संकलन-गणाचार्यश्री विराग सागर जी महाराज

1. अनित्य भावना

णमिऊण सव्व सिद्धे, झाणुत्तम खविद दीह संसारे।
दस दस दो दो य जिणे, दस दो अणुपेहणं वोच्छे।।1.वा.वे.।।

वर भवण याण वाहण, सयणासण देव मणुव रायाणं।
मादु पिदु सजण भिच्च, संबंधिणो य पिदि वियाणिच्च।।3.वा.वे।।

सामग्गिं दियरूवं, आरोग्गं जोव्वणं बलं तेजं।
सोहग्गं लावण्णं, सुरधणु मिव सस्सयं ण हवे।।4.वा.वे।।

चइऊण महामोहं, विसए मुणिऊण भंगुरे सव्वे।
णिव्विसयं कुणह मणं, जेण सुहं उत्तमं लहह।।22.का.अ.।।

जा सासया ण लच्छी, चक्कहराणं पि पुण्णवंताणं।
सा किं बंधेइ रइं, इयर जणाणं अपुण्णाणं।।10.का.अ.।।

ता भुंजिज्जउ लच्छी, दिज्जउ दाणे दया पहाणेण।
जा जल तरंग चवला, दो तिण्णि दिणाइ चिट्ठेइ।।12.का.अ.।।

2. अशरण भावना

तत्थ भवे किं सरणं, जत्थ सुरिंदाण दीसदे विलओ।
हरि-हर-बंभादीया, कालेण य कवलिया जत्थ।।23.का.अ.।।

दंसण णाण चरित्तं, सरणं सेवेह परम-सद्धाए।
अण्णं किं पि ण सरणं, संसारे संसरंताणं।।30.का.अ.।।

अप्पाणं पि य सरणं, खमादि-भावेहिं परिणदो होदि।
तिव्व कसायाविट्ठो, अप्पाणं हणदि अप्पेण।।31.का.अ.।।

मणिमंतो सहरक्खा, हय गय रहओ य सयल विज्जाओ।
जीवाणं णहि सरणं, तिसु लोए मरण समयम्हि।।8.वा.वे.।।
अरूहा सिद्धाआइरिया, उवझाया साहु पंच परमेट्ठी।
ते वि हु चेट्ठदि जम्हा-तम्हा आदा हुमे सरणं।।12.वा.वे.।।

3. संसार भावना

पंचविहे संसारे, जाइ जरा मरण रोग भय पउरे।
जिण मग्ग मपेच्छंतो, जीवो परिभमदि चिरकालं।।24.वा.वे.।।
संजोग विप्पजोगं, लाहालाहं सुहं च दुक्खं च।
संसारे भूदाणं, होदि हु माणं तहाव माणं च।।36.वा.वे.।।
सत्तू वि होदि मित्तो, मित्तो वि य जायदे तहा सत्तू।
कम्म विवाग-वसादो, एसो संसार-सब्भावो।।57.का.अ.।।
कस्स वि दुट्ठ कलत्तं, कस्स वि दुव्वसण वसणिओ पुत्तो।
कस्स वि-अरिसम-बंधु, कस्स वि दुहिदा वि दुच्चरिया।।53.का.अ.।।
पुत्त कलत्त णिमित्तं, अत्थं अज्जयदि पाप बुद्धीए।
परिहरदि दयादाणं, सो जीवो भमदि संसारे।।30.वा.वे.।।

4. एकत्व भावना

एक्को करेदि कम्मं, एक्को हिंडदि य दीह संसारे।
एक्को जायदि मरदि य, तस्स फलं भुंजदे एक्को।।14.वा.वे.।।
सव्वायरेण जाणह एक्कं जीवं सरीरदो भिण्णं।
जम्हि दु मुणिदे जीवे होदि असेसं खणे हेयं।।79.का.अ.।।
इक्को संचदि पुण्णं, इक्को भुंजेदि विविह सुर सोक्खं।
इक्को खवेदि कम्मं, इक्को वि य पावए मोक्खं।।76का.अ.।।
सुयणो पिच्छंतो वि हु ण दुक्ख लेसं पि सक्कदे गहिदुं।

एवं जाणंतो वि हु, तो वि ममत्तं ण छंडेइ।।77.का.अ.।।
एक्कोऽहं णिम्ममो सुद्धो, णाण दंसण लक्खणो।
सुद्धेयत्त मुपादेय, मेवं चिंतेइ संजुदो।।20.वा.वे.।।

5. अन्यत्व भावना

मादा पिदर सहोदर, पुत्त कलत्तादि बन्धु संदोहो।
जीवस्स ण संबंधो, णियकज्ज वसेण वट्टंति।।21.वा.वे.।।
जो जाणिऊण देहं, जीव सरूवादु तच्चदो भिण्णं।
अप्पाणं पि य सेवदि, कज्जकरं, तस्स अण्णत्तं।।82.का.अ.।।
अण्णो अण्णं सोयदि, मदोत्ति ममणाह गोत्ति मण्णंतो।
अप्पाणं ण हु सोयदि, संसार महण्णवे बुड्ढं।।22.वा.वे.।।
एवं बाहिर दव्वं, जाणदि रुवादु अप्पणो भिण्णं।
जाणंतो विहु जीवो, तत्थेव हि रच्चदे मूढो।।81.का.अ.।।
अण्णं इमं सरीरादिगं पि, जं होज्ज बाहिरं दव्वं।
णाणं दंसणमादा एवं चिंतेहि अण्णत्तं।।23.वा.वे.।।

6. अशुचि भावना

अट्ठीहिं पडिबद्धं, मंस विलित्तं तएण ओच्छण्णं।
किमि संकुलेहिं भरिय मचोक्खं देहं सयाकालं।।43.वा.वे.।।
दुग्गंधं बीभत्थं, कलिमल भरिदं अचेयणं मुत्तं।
सडण पडण सहावं, देहं इदि चिंतए णिच्चं।।44.वा.वे.।।
सुट्ठु पवित्तं दव्वं, सरस-सुगंधं मणोहरं जं पि।
देह णिहित्तं जायदि, घिणावणं सुट्ठु दुग्गंधं।।84.का.अ.।।
मणुयाणं असुइमयं, विहिणादेहं विणिम्मियं जाण।
तेसिं विरमण कज्जे ते पुण तत्थेव अणुरत्ता।।85.का.अ.।।
जो पर-देह-विरत्तो, णिय-देहे ण य करेदि अणुरायं।
अप्प-सरुव-सुरत्तो, असुइत्ते भावणा तस्स।।87.का.अ.।।

7. आस्रव भावना

मोह विवाग वसादो, जे परिणामा हवंति जीवस्स।
ते आसवा मुणिज्जसु, मिच्छत्ताई अणेय विहा।।89.का.अ.।।
मिच्छत्तं अविरमणं, कसाय जोगा य आसवा होंति।
पण पण चउ तिय भेदा, सम्मं परिकित्तिदा समये।।47.वा.वे.।।
आसव हेदू जीवो, जम्म समुद्दे णिमज्जदे खिप्पं।
आसव किरिया तम्हा मोक्ख णिमित्तं ण चिंतेज्जो।।58.वा.वे.।।
एदे मोहय भावा, जो परिवज्जेइ उवसमे लीणो।
हेयं ति मण्णमाणो, आसव अणुवेहणं तस्स।।94.का.अ.।।
एवं जाणंतो वि हु, परिचयणीए वि जो ण परिहरइ।
तस्सासवाणु वेक्खा, सव्वा वि णिरत्थया होदि।।93.का.अ.।।

8. संवर भावना

जो पुण विसय विरत्तो, अप्पाणं सव्वदो वि संवरइ।
मणहर-विसएहिंतो, तस्सफुडं संवरो होदि।।101.का.अ.।।
गुत्ती समिदी धम्मो, अणुवेक्खा तह य परिसहजओ वि।
उक्किट्ठं चारित्तं, संवर हेदू विसेसेण।।96.का.अ.।।
सुहजोगस्स पवित्ती, संवरणं कुणदि असुह जोगस्स।
सुहजोगस्स णिरोहो, सुद्धुव जोगेण संभवदि।।63.वा.वे.।।
सुद्धुव जोगेण पुणो, धम्मं सुक्कं च होदि जीवस्स।
तम्हा संवर हेदू, झाणोत्ति विचिंतिए णिच्चं।।64.वा.वे.।।
एदे संवर हेदू, वियार माणो वि जो ण आयरइ।
सो भमइ चिरं कालं, संसारे दुक्ख-संतत्तो।।100.का.अ.।।

9. निर्जरा भावना

बारस विहेण तवसा, णियाण रहियस्स णिज्जरा होदि।

वेरग्ग भावणादो, णिरहंकारस्स णाणिस्स ।।102.का.अ.।।

सा पुण दुविहा णेया, सकाल-पत्ता तवेण कयमाणा।
चादुगदीणं पढमा, वय जुत्ताणं हवे बिदिया ।।104.का.अ.।।

जो विसहदि दुव्वयणं, साहम्मिय-हीलणं च उवसग्गं।
जिणिऊण कसाय-रिउं, तस्स हवे णिज्जरा विउला ।।109.का.अ.।।

रिण-मोयणं व मण्णइ, जो उवसग्गं परीसहं तिव्वं।
पाव-फलं मे एदं, मया वि जं संचिदं पुव्वं ।।110.का.अ.।।

उवसम भाव तवाणं, जह-जह बड्ढी हवेइ साहूणं।
तह-तह णिज्जर वड्ढी, विसेसदो धम्म सुक्कादो ।।105.का.अ.।।

10. लोक भावना

सव्वायास मणंतं, तस्स य बहु मज्झ संठिओ लोओ।
सो केण वि णेव कओ, ण य धरियो हरि हरादीहिं ।।115.का.अ.।।

जइ पुण सुद्ध सहावा, सव्वे जीवा अणाइ काले वि।
तो तव चरण विहाणं, सव्वेसिं णिप्फलं होदि ।।200.का.अ.।।

ता कह गिण्हदि देहं, णाणा कम्माणि ता कहं कुणदि।
सुहिदा वि य दुहिदा वि य, णाणा रुवा कहं होंति ।।201.का.अ.।।

सव्वे कम्म णिवद्धा, संसरमाणा अणाइ कालम्हि।
पच्छा तोडिय बंधं, सिद्धा सुद्धा धुवं होंति ।।202.का.अ.।।

एवं लोय सहावं, जो झायदि उवसमेक्क सब्भावो।
सो खविय कम्म पुंजं, तिल्लोय सिहामणी होदि ।।283.का.अ.।।

11. बोधि दुर्लभ भावना

उप्पज्जदि सण्णाणं, जेण उवाएण तस्सुवायस्स।
चिंता हवेइ बोही, अच्चंतं दुल्लहं होदि ।।83.वा.वे।।

मणुव गए वि तओ, मणुव गईए महव्वदं सयलं।
मणुव गदीए झाणं, मणुव गदीए वि णिव्वाणं ।।299.का.अ.।।

इह दुलहं मणुयत्तं, लहिऊणं जे रमंति विसएसु।
ते लहिय दिव्व रयणं, भूइ णिमित्तं पजालंति।।300.का.अ.।।
इह सव्व दुलह दुलहं, दंसण णाणं तहा चरितं च।
मुणिऊण य संसारे, महायरं कुणह तिण्हं पि।।303.का.अ.।।
एवं जायदि णाणं, हेयमुवादेय णिच्छये णत्थि।
चिंतिज्जइ मुणि बोहिं, संसार विरमणट्ठे य।।86.वा.वे।।

12. धर्म भावना

जो जाणदि पच्चक्खं, तियालगुण पज्जएहिं संजुत्तं।
लोयालोयं सयलं, सो सव्वण्णहू हवे देवो।।302.का.अ.।।
तेणुवइट्ठो धम्मो, संगासत्ताण तह असंगाणं।
पढमो बारह भेओ, दह भेओ भासिओ विदिओ।।304.का.अ.।।
धम्मो वत्थुसहावो, खमादिभावो य दस विहो धम्मो।
रयणत्तयं च धम्मो, जीवाणं रक्खणं धम्मो।।478.का.अ।।
धम्मे एयग्ग मणो, जोणवि वेदेदि पंचहा विसयं।
वेरग्गमओ णाणी, धम्मज्झाणं हवे तस्स।।479.का.अ.।।
इय पच्चक्खं पेच्छह, धम्मा हम्माण विविह माहप्पं।
धम्मं आयरह सया, पावं दूरेण परिहरह।।437.का.अ.।।
बारस अणुवेक्खाओ, पच्चक्खाणं तहेव पडि कमणं।
आलोयणं समाहिं, तम्हा भावेज्ज अणुवेक्खं।।87.वा.अ.।।
मोक्ख गया जे पुरिसा, अणाइ कालेण बार अणुवेक्खं।
परि भाविऊण सम्मं, पणमामि पुणो पुणो तेसिं।।89.वा.अ.।।

इति अणुपेक्खा

✦ ✦ ✦

लघु तत्त्वार्थ सूत्र

(आचार्य प्रभाचन्द्र विरचित)

(प्रथम अध्याय)

मंगलाचरण

सद्दृष्टि ज्ञानवृत्तात्मा मोक्षमार्गः सनातनः।
आविरासीद्यतो वंदे तमहं वीर मच्युत्तम्।।

सम्यग्दर्शनाऽवगम वृत्तानि मोक्ष हेतुः।।1।। जीवादि सप्त तत्त्वम्।।2।। तदर्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्।।3।। तदुत्पत्ति र्द्विधा।।4।। नामादिना तन्नयासः।।5।। प्रमाणे द्वे।।6।। नयाःसप्त।।7।। तैरधिगमस्तत्त्वानाम्।।8।। सदादिभिश्च।।9।। मत्यादीनि ज्ञानानि।।10।। क्षयोपशम (क्षय) हेतवः (तूनि)।।11।। षड्विधोऽवधिः।।12।। द्विविधो मनः पर्ययः।।13।। अखंडं केवलम्।।14।। समयं समय मेकत्र चत्वारि।।15।।

"इति श्री वृहत्प्रभाचन्द्र विरचिते तत्त्वार्थ सूत्रे प्रथमोऽध्यायः।"

(दूसरा अध्याय)

जीवस्य पंच भावाः।।1।। उपयोगस्तल्लक्षणम्।।2।। स द्विविधः।।3।। द्वीन्द्रिया दयस्त्रसाः।।4।। शेषाः स्थावराः।।5।। द्रव्य भाव भेदा दिंद्रियं द्विप्रकारम्।।6।। विग्रहाद्या गतयः।।7।। सचित्ता दयो योनयः।।8।। औदारिकादिनी शरीराणि।।9।। एकस्मिन्नात्मन्या चतुर्भ्यः।।10।। आहारकं प्रमत्त (संयत) स्यैव।।11।। तीर्थेश-देव-नारक- भोग भुवोऽखंडायुषः।।12।।

"इति श्री वृहत्प्रभाचन्द्र विरचिते तत्त्वार्थ सूत्रे द्वितीयेऽध्यायः।।"

(तीसरा अध्याय)

रत्नप्रभाद्याः सप्त भूमयः।।1।। तासु नारकाः सपंच दुःखाः।।2।। जम्बू द्वीपलवणोदादयोऽसंख्येय द्वीपोदधयः।।3।। तन्मध्येलक्षयोजनप्रभः सचूलिको मेरुः।।4।। हिमवत्प्रमुखाः षट् कुलनगाः।।5।। तेषु पद्मादयो हृदाः।।6।। तन्मध्ये श्र्यादयो देव्यः।।7।। तेभ्यो गंगादयश्चतुर्दश महानद्यः।।8।। भरतादीनि वर्षाणि।।9।। त्रिविधा भोगभूमयः।।10।। भरतैरावतेषु षट् कालाः।।11।। विदेहेषु सन्ततश्चतुर्थः।।12।। आर्या म्लेच्छाश्च नरः।।13।। त्रिषष्ठि शलाका पुरुषाः।।14।। एकादश रुद्राः।।15।। नव नारदाः।।16।। चतुर्विंशतिकामदेवाः।।17।। मनुष्य तिरश्चामुत्कृष्ट-जघन्यायुषी- त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते।।18।।

"इति श्री वृहत्प्रभाचन्द्र विरचिते तत्त्वार्थ सूत्रे तृतीयोऽध्यायः।"

(चौथा अध्याय)

दशाऽष्ट पंच भेद भावन-व्यन्तर-ज्योतिष्काः।।1।। वैमानिका द्विविधाः कल्पजकल्पातीत भेदात्।।2।। सौधर्मादयः षोडश कल्पाः।।3।। ब्रह्मालया लोकन्तिकाः।।4।। ग्रैवेयकाद्या अकल्पाः।।5।। सामान्यतो देवनारकाणा मुत्कृष्टेतरस्थिति स्त्रयस्त्रिंशत्सागरायुताब्दाः।।6।।

"इतिश्री वृहत्प्रभाचन्द्र विरचिते तत्त्वार्थ सूत्रे चतुर्थोऽध्यायः।"

(पाँचवा अध्याय)

पंचास्तिकायाः।।1।। नित्यावस्थिताः।।2।। रुपिणः पुद्गलाः।।3।। धर्मादिरक्रियत्वम्।।4।। जीवोदेर्लोकाकाशेऽवगाहः।।5।। सत्त्वं

द्रव्य लक्षणम् । ।6 । । उत्पादादियुक्तं सत् । ।7 । । सहक्रमभाविगुणपर्ययवद्-द्रव्यम् । ।8 । । कालश्च । ।9 । । अनन्त समयश्च । ।10 । । गुणानामगुणत्वम् । ।11 । ।

"इति श्री वृहत्प्रभाचन्द्रे विरचिते तत्त्वार्थ सूत्रे पंचमोऽध्यायः । ।"

(छट्ठा अध्याय)

त्रिकरणैः कर्म योगः । ।1 । । प्रशस्ताप्रशस्तौ । ।2 । । पुण्यपापयोः (हेतु) । ।3 । । गुरुनिन्हवादयो ज्ञान दर्शनावरणयोः । ।4 । । दुःखव्रत्यनुकंपाद्या असाता सातयोः । ।5 । । केवल्यादिविवादो (द्यवर्णवादो ?) दर्शन मोहस्य । ।6 । । कषायजनिततीव्र-परिणामश्चारित्रमोहस्य । ।7 । । बह्वारंभपरिग्रहाद्यानारकाद्यायुष्क हेतवः । ।8 । । योगवक्रताद्या अशुभ नाम्नः । ।9 । । तद्वैपरीत्यं शुभस्य । ।10 । । दर्शन विशुद्ध्यादिषोडश भावनास्तीर्थ-करत्वस्य । ।11 । । आत्मविकत्थनाद्या नीचैर्गोत्रस्य । ।12 । । तद्वयत्ययो महतः । ।13 । । दानादि विघ्नकरण- मंतरायस्य । ।14 । ।

"इति श्री वृहत्प्रभाचन्द्र विरचिते तत्त्वार्थ सूत्रे षष्ठोऽध्याय ।"

(सातवां अध्याय)

हिंसादि पंचविरतिर्व्रतम् । ।1 । । महाऽणुभेदेनतद्द्विविधम् । ।2 । । तद्दार्ढ्याय भावनाः पंचविंशतिः । ।3 । । मैत्र्यादयश्चतस्रः । ।4 । । श्रमणानामष्टाविंशतिर्मूलगुणाः । ।5 । । श्रावकाणामष्टौ । ।6 । । शीलसप्तकं च । ।7 । । शंकाद्याः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः । ।8 । । बंधादयो व्रतानाम् । ।9 । । मित्रस्मृत्याद्याः सन्यासस्य । ।10 । । स्वपरहिताय स्वस्यातिसर्जनं दानम् । ।11 । ।

"इति श्री वृहत्प्रभाचन्द्र विरचिते तत्त्वार्थ सूत्रे सप्तमोऽध्यायः ।"

(आठवाँ अध्याय)

मिथ्यादर्शनादयोः बंध हेतवः ।।1।। चतुर्धा बन्धाः ।।2।। मूलप्रकृतयोऽष्टौ ।।3।। उत्तराअष्टाचत्वारिंशच्छतम् ।।4।। ज्ञानावरणादि त्रयस्यांतरायस्य च त्रिंशत्सागरोपम कोटीकोट्यः पराध्या (पराः?) स्थितिः ।।5।। मोहनीयस्य सप्ततिः ।।6।। त्रयस्त्रिंशदे वायुषः ।।7।। नाम गोत्रयोर्विंशतिः ।।8।।

"इति श्री वृहत्प्रभाचन्द्र विरचिते तत्त्वार्थ सूत्रे अष्टमोऽध्यायः।।"

(नवम अध्याय)

गुप्त्यादिना संवरः ।।1।। तपसा निर्जराऽपि ।।2।। उत्तमसंहननस्यान्त र्मुहूर्तावस्थायि ध्यानम् ।।3।। तच्चतुर्विधम् ।।4।। आद्ये संसार कारणे ।।5।। परे मोक्षस्य ।।6।। पुलाकाद्याः पंच निर्ग्रन्थः ।।7।।

"इति श्री वृहत्प्रभाचन्द्र विरचिते तत्त्वार्थसूत्रे नवमोऽध्यायः।।"

(दसवाँ अध्याय)

मोहक्षये घातित्रयापनोदात्केवलम् ।।1।। अशेषकर्मक्षये मोक्षः ।।2।। तत् उर्ध्व गच्छत्या लोकान्तात् ।।3।। ततो न गमनं धर्मास्तिकाया-भावात् ।।4।। क्षेत्रादि सिद्धभेदाः साध्याः ।।5।।

"इति श्री बृहत्प्रभाचन्द्र विरचिते तत्त्वार्थ सूत्रे दशमोऽयायः।।"

> कटुता, अपमान, दण्डों की मार की अपेक्षा प्रेम, स्नेह, वात्सल्य से किया गया हृदय परिवर्तन स्थाई होता है।

आलाप-पद्धति

“आचार्य श्री देवसेन स्वामी विरचित”

मंगलाचरण

गुणानां विस्तरं वक्ष्ये, स्वभावानां तथैव च।
पर्यायाणां विशेषेण, नत्वा वीरं जिनेश्वरम्।।

आलापपद्धतिर्वचनरचनाऽनुक्रमेण नयचक्रस्योपरि उच्यते।।1।। सा च किमर्थम्?।।2।। द्रव्य लक्षण सिद्धयर्थं स्वभाव सिद्धयर्थंच।।3।। द्रव्याणि कानि?।।4।। जीव पुद्गल धर्माधर्माकाश काल द्रव्याणि।।5।। सद्-द्रव्यलक्षणम्।।6।। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्तं सत्।।7।।

।।इति द्रव्याधिकारः।।

लक्षणानि कानि? ।।8।। अस्तित्वं, वस्तुत्वं, द्रव्यत्वं, प्रमेयत्वं, अगुरुलघुत्वं, प्रदेशत्वम्, चेतनत्वमचेतनत्वं, मूर्तत्वं, अमूर्तत्वं, द्रव्याणां दस सामान्य गुणाः।।9।। प्रत्येक मष्टौ सर्वेषाम्।।10।। ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्याणि, स्पर्श-रस-गन्ध -वर्णाः, गति-हेतुत्वं, स्थिति-हेतुत्वं, अवगाहन-हेतुत्वं, वर्तना-हेतुत्वं, चेतनत्वं-अचेतनत्वं, मूर्तत्वं-अमूर्तत्वं, द्रव्याणां षोडश विशेष गुणाः।।11।। प्रत्येकं जीव पुद्गलयोः षट्।।12।। इतरेषां प्रत्येकं त्रयो गुणाः।।13।।

अन्तस्थाश्चत्वारो गुणाः स्वजात्य- पेक्षया सामान्यगुणा विजात्य-पेक्षया त एव विशेषगुणाः।।14।।

।।इति गुणाधिकारः।।

"पर्याय अधिकार"

गुण विकाराः पर्यायास्ते द्वेधा अर्थ-व्यञ्जन-पर्याय-भेदात्।।15।। अर्थ-पर्यायास्ते द्वेधा स्वभाव विभाव पर्याय भेदात्।।16।। अगुरुलघुविकाराः स्वभावार्थ पर्यायास्ते द्वादशधा षड्वृद्धिरुपाः षड्ढानिरुपाः, अनंतभाग वृद्धिः, असंख्यातभागवृद्धिः, संख्यातभागवृद्धिः, संख्यातगुणवृद्धिः, असंख्यात गुणवृद्धिः, अनंत गुणवृद्धिः, इति षड्वृद्धिः तथा अनंत भागहानिः, असंख्यात भागहानिः, संख्यात भागहानिः, संख्यात गुणहानिः, असंख्यात गुणहानिः, अनंत गुणहानिः, इति षड्हानिः। एवं षड्वृद्धि-षड्ढानिरुपा ज्ञेयाः।।17।। विभावार्थ-पर्यायाः षड्-विधाः मिथ्यात्व- कषाय-राग-द्वेष- पुण्य-पाप-रुपाऽध्यवसायाः।।18।।

।।इति अर्थ पर्याय।।

(व्यञ्जन-पर्यायास्ते-द्वेधा स्वभाव विभाव-पर्याय-भेदात्।) विभाव-द्रव्य-व्यंजन- पर्यायाश्चतुर्विधा नर-नारकादि-पर्यायाः अथवा चतुरशीति-लक्षा योनयः।।19।। विभाव-गुण-व्यंजन-पर्याया मत्यादयः।।20।। स्वभाव-द्रव्य-व्यंजन-पर्यायाश्चरम-शरीरात् किंचिन्नयून-सिद्ध-पर्यायाः।।21।। स्वभाव-गुण-व्यंजनपर्याया-अनन्त-चतुष्टय-रूपा-जीवस्य।।22।। पुद्गलस्य तु द्वयणुकादयो विभाव द्रव्यव्यंजन पर्यायाः।।23।। रस-रसान्तर-गन्ध-गन्धान्तरादि-विभाव-गुण-व्यंजन- पर्यायाः।।24।।

अविभागिपुद्गल परमाणुः स्वभाव-द्रव्य-व्यंजन-पर्यायः ।।25।। वर्ण-गंध रसैकैका विरुद्ध-स्पर्श-द्वयं स्वभाव गुण व्यंजन पर्यायाः ।।26।।

।।इति व्यञ्जन पर्याय।।

गाथा

अनाद्यनिधने द्रव्ये, स्वपर्यायाः प्रतिक्षणम्।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति, जल-कल्लोल-वज्जले।।1।।
धर्माधर्म-नभः काला, अर्थ-पर्याय-गोचराः।
व्यंजनेन तु सम्बद्धौ, द्वावन्यौ जीव पुद्गलौ।।2।।

।।इति पर्यायाधिकारः।।

गुण-पर्यय-वद्-द्रव्यम् ।।27।। स्वभावाः कथ्यन्ते- अस्तिस्वभावः, नास्तिस्वभावः, नित्यस्वभावः, अनित्य स्वभावः, एकस्वभावः, अनेकस्वभावः, भेदस्वभावः, अभेदस्वभावः, भव्यस्वभावः, अभव्यस्वभावः, परमस्वभावः, एते द्रव्याणामेकादश सामान्यस्वभावाः, चेतनस्वभावः, अचेतनस्वभावः, मूर्तस्वभावः, अमूर्तस्वभावः, एकप्रदेश स्वभावः, अनेकप्रदेश स्वभावः, विभावस्वभावः, शुद्ध स्वभावः, अशुद्धस्वभावः, उपचरितस्वभावः, एते द्रव्याणां दश विशेष स्वभावः ।।28।। जीव-पुद्गलयोरेक-विंशतिः ।।29।। चेतन स्वभावः, मूर्तस्वभावः, विभावस्वभावः, अशुद्ध स्वभावः, उपचरितस्वभावः, एतैर्विनाधर्मादि त्रयाणां षोडशस्वभावाः सन्ति ।।30।। तत्र बहुप्रदेशत्वं विना कालस्य पंचदश स्वभावाः ।।31।।

गाथा

एक-विंशति-भावाः स्यु-र्जीव-पुद्गल-यो-र्मताः ।
धर्मादीनां षोडश स्युः, काले पंचदश स्मृताः । ।3 । ।

। ।इति स्वभावाधिकारः । ।

"प्रमाण अधिकार"

ते कुतो ज्ञेयाः? । ।32 । । प्रमाण-नय-विवक्षातः । ।33 । । सम्यग्ज्ञानं प्रमाणम् । ।34 । । तद्-द्वेधा प्रत्यक्षेतर-भेदात् । ।35 । । अवधि-मनः पर्यया-वेक-देश-प्रत्यक्षौ । ।36 । । केवलं सकल प्रत्यक्षं । ।37 । । मतिश्रुते परोक्षे । ।38 ।

। ।इति प्रमाणधिकारः । ।

"नयाधिकार"

तदवयवा नयाः । ।39 । । नय भेदा उच्यन्ते । ।40 । ।

गाथाणिच्छय-ववहारणया, मूलम-भेया-णयाण सव्वाणं ।
णिच्छय-साहण-हेऊ, दव्वय-पज्जत्थिया मुणह । ।4 । ।

द्रव्यार्थिकः, पर्यायार्थिकः, नैगमः, संग्रहः, व्यवहारः, ऋजुसूत्रः, शब्दः, समभिरूढः, एवंभूतः इति नवनयाः स्मृताः । ।41 । । उपनयाश्च कथ्यन्ते । ।42 । । नयानां समीपा उपनयाः । ।43 । । सद्भूतव्यवहारः, असद्भूतव्यवहारः, उपचरितासद्भूत व्यवहार- श्चतेत्युपनयास्त्रेधा । ।44 । । इदानी-मेतेषां भेदा उच्यन्ते । ।45 । । द्रव्यार्थिकस्य दश भेदाः । ।46 । । 1. कर्मोपाधिनिरपेक्षः शुद्धद्रव्यार्थिकः, यथा संसारी-जीवः सिद्ध-सदृक्शुद्धात्मा । ।47 । । 2. उत्पाद-व्यय-गौणत्वेन सत्ता-ग्राहकः शुद्ध-द्रव्यार्थिको यथा द्रव्यं नित्यं । ।48 । । 3. भेदकल्पनानिरपेक्षः

शुद्धो द्रव्यार्थिको यथा निजगुण पर्यायस्वाभावाद् द्रव्यमभिन्नम्।।49।। 4. कर्मोपाधि-सोपेक्षोऽशुद्ध-द्रव्यार्थिको यथा क्रोधादिकर्मज-भाव आत्मा।।50।। 5. उत्पाद-व्यय-सापेक्षोऽशुद्ध-द्रव्यार्थिको यथैकस्मिन् समये द्रव्य-मुत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मकम्।।51।। 6. भेद-कल्पना-सापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिको यथात्मनो दर्शन-ज्ञानादयो गुणाः।।52।। 7. अन्वय-सापेक्षो द्रव्यार्थिको यथा गुण-पर्याय-स्वभावं द्रव्यम्।।53।। 8. स्व-द्रव्यादिग्राहक- द्रव्यार्थिको यथा स्वद्रव्यादि-चतुष्टयापेक्षया द्रव्यमस्ति।।54।। 9. पर-द्रव्यादि-ग्राहक-द्रव्यार्थिको यथा पर- द्रव्यादि-चतुष्टया-पेक्षया द्रव्यं नास्ति।।55।। 10. परम-भाव-ग्राहक-द्रव्यार्थिको यथा ज्ञान स्वरूप आत्मा, अत्रानेक स्वभावानां मध्ये, ज्ञानाख्यः परमस्वभावो गृहीतः।।56।।

।।इति द्रव्यार्थिकस्य दश भेदाः।।

अथ पर्यायार्थिकस्य षड् भेदाः।।57।। 1. अनादिनित्य पर्यायार्थिको यथा पुद्गल-पर्यायो नित्यो मेर्वादिः।।58।। 2. सादि नित्य पर्यायार्थिको यथा सिद्ध पर्यायो नित्यः।।59।। 3. सत्ता गौणत्वेनोत्पाद व्यय ग्राहक स्वभावोऽनित्य शुद्ध पर्यायार्थिको यथा समयं-समयं प्रति पर्याया विनाशिनः।।60।। 4. सत्तासापेक्ष-स्वभावोनित्या शुद्ध पर्यायार्थिको यथा एकस्मिन् समये त्रयात्मकः पर्यायः।।61।। 5. कर्मोपाधि-निरपेक्षस्वभावोऽनित्य-शुद्ध-पर्यायार्थिको यथा, सिद्ध-पर्याय-सदृशाः शुद्धाः संसारिणां पर्यायाः।।62।। 6. कर्मोपाधि-

सापेक्ष- स्वभावोऽनित्याशुद्ध-पर्यायार्थिको यथा संसारिणा-मुत्पत्ति-मरणे स्तः।।63।।

।। इति पर्यायार्थिकस्य षड्भेदाः।।

नैगमस्त्रेधा भूत-भाविवर्तमान-काल-भेदात्।।64।। अतीते वर्तमानारोपणं यत्र, स भूतनैगमो यथा अद्य दीपोत्सव-दिने श्री वर्द्धमानस्वामी मोक्षं गतः।।65।। भाविनि भूत-वत्कथनं यत्र स भावि-नैगमो यथा अर्हन् सिद्ध एव।।66।। कर्तुमारब्ध- मीषन्निष्पन्न-मनिष्पन्नं वा वस्तु निष्पन्नवत्-कथ्यते यत्र स वर्तमान-नैगमो यथा ओदनः पच्यते।।67।।

।। इति नैगमस्त्रेधा।।

संग्रहो द्वेधाः।।68।। सामान्य संग्रहो यथा सर्वाणि द्रव्याणि परस्पर-मविरोधिनी।।69।। विशेष-संग्रहो यथा सर्वे जीवाः परस्परमविरोधिनः।।70।।

।। इति संग्रहो द्विधा।।

व्यवहारोऽपि द्वेधा।।71।। 1।। सामान्य-संग्रह भेद को व्यवहारो यथा द्रव्याणि जीवाजीवाः।।72।।2।। विशेष-संग्रह-भेदको व्यवहारो यथा जीवाः संसारिणो मुक्ताश्च।।73।।

।। इति व्यवहारो द्वेधा।।

ऋजु सूत्रोऽपि द्विविधः।।74।। सूक्ष्मर्जुसूत्रो यथा एक-समयावस्थायी पर्यायः।।75।। स्थूलर्जु-सूत्रो यथा मनुष्यादि-पर्यायास्तदायुः प्रमाण-कालं तिष्ठन्ति।।76।।

।। इति ऋजु सूत्रो द्वेधा।।

शब्द-समभिरुढैवंभूता नयाः प्रत्येक-मेकैका नयाः।।77।।

शब्दनयो यथा दाराः भार्या कलत्रं जलं आपः।।78।। समभिरुढ़ नयो यथा गौः पशुः।।79।। एवंभूत नयो यथा इन्दतीति इन्द्रः।।80।।

।। उक्ता अष्टाविंशतिर्नयभेदाः।।

उपनयभेदा उच्यन्ते।।81।। सद्भूत व्यवहारो द्विधा।।82।। शुद्ध-सद्भूत व्यवहारो यथा शुद्ध-गुण-शुद्ध-गुणिनोः शुद्ध-पर्याय शुद्ध-पर्यायिणोर्भेद-कथनम्।।83।। अशुद्ध-सद्भूत-व्यवहारो यथाऽशुद्धगुणाऽशुद्ध गुणिनोरशुद्ध पर्यायाशुद्ध पर्यायिणोर्भेद कथनम्।।84।।

।। इति सद्भूतो व्यवहारो द्वेधा।।

असद्भूत-व्यवहार-स्त्रेधा।।85।। स्वजात्यसद्भूतव्यवहारो यथा परमाणु-र्बहु- प्रदेशीति कथन-मित्यादि।।86।। विजात्यसद्भूतव्यवहारो यथा मूर्तं मतिज्ञानं यतो मूर्त द्रव्येण जनितम्।।87।। स्वजातिविजात्यसद्भूतव्यवहारो यथा ज्ञेये जीवेऽजीवे ज्ञानमिति कथनं ज्ञानस्य विषयात्।।88।।

।। इति सद्भूत व्यवहारस्त्रेधा।।

उपचरिता सद्भूत-व्यवहारस्त्रेधा।।89।। स्वजात्युपचरिता-सद्भूत-व्यवहारो यथा पुत्रदारादि मम।।90।। विजात्युपचरितासद्भूत-व्यवहारो यथा वस्त्राभरण-हेमरत्नादिमम।।91।। स्वजातिविजात्युपचरितासद्भूत -व्यवहारो यथा देश-राज्य- दुर्गादि मम।।92।।

।। इत्युपचरितासद्भूत व्यवहारस्त्रेधा।।

"गुण व्युत्पत्ति अधिकार"

सहभुवो गुणाः, क्रम वर्तिनः पर्यायाः ।।93।। गुण्यते पृथक्-क्रियते द्रव्यं द्रव्याद्यैस्ते-गुणाः ।।94।। अस्तीत्ये-तस्य भावोऽस्तित्वं सद्-रूपत्वम् ।।95।। वस्तुनो भावो वस्तुत्वम्, सामान्य विशेषात्मकं वस्तु ।।96।। द्रव्यस्य भावो द्रव्यत्वम् निज-निज प्रदेश समूहैरखण्ड वृत्या-स्वभाव-विभावपर्यायान्। द्रवति द्रोष्यति अदुद्रवदिति द्रव्यम् ।।97।। सद्-द्रव्य-लक्षणम्, सीदति स्वकीयान् गुणपर्यायान् व्याप्नोतीति सत्, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत् ।।98।। प्रमेयस्य-भावः प्रमेयत्वम्, प्रमाणेन स्व-पर-रूपं परिच्छेद्यं प्रमेयम् ।।99।। अगुरु-लघोर्भावोऽगुरुलघुत्वम्, सूक्ष्मा अवाग्गोचराः प्रतिक्षणं वर्तमाना आगम प्रमाण्यादभ्युप गम्या अगुरुलघु-गुणाः ।।100।।

गाथा

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं, हेतु-भिर्नैव हन्यते।
आज्ञा सिद्धं तु तद् ग्राह्यं, नान्यथा वादिनो जिनाः ।।5।।

प्रदेशस्य भावः प्रदेशत्वं क्षेत्रत्वं अविभागि-पुद्गल-परमाणु-नावष्टब्धम् ।।101।। चेतनस्य भावश्चेतनत्वम् चैतन्य मनुभवनम् ।।102।।

गाथा

चैतन्य-मनुभूतिः स्यात्, सा क्रिया-रूपमेव च।
क्रिया मनोवचः -कायेष्वन्विता वर्तते ध्रुवम् ।।6।।

अचेतनस्य भावोऽचेतनत्वम चैतन्य-मननु-भवनम् ।।103।। मूर्तस्य भावो-रूपादि-मत्त्वम् ।।104।। अमूर्तस्य भावोऽमूर्तत्वं रूपादि-रहितत्वम् ।।105।।

।। इति गुणानां व्युत्पति अधिकारः।।

“पर्याय की व्युत्पत्ति”

स्वभाव विभाव रुपतया याति पर्येति परिणमतीति पर्यायः ।।106।।

।। इति पर्यायस्य व्युत्पत्ति अधिकारः ।।

“स्वभाव व्युत्पत्ति अधिकार”

स्वभाव लाभादच्युतत्वादस्ति-स्वभावः ।।107।। परस्वरूपेणाभावान्नास्ति-स्वभावः ।।108।। निज-निज नानापर्यायेषु तदेवेदमिति द्रव्यस्योपलम्भान्नित्य स्वभावः ।।109।। तस्याप्यनेक-पर्याय-परिणामित्वादनित्य- स्वभावः ।।110।। स्वभावानामेकाधारत्वादेक-स्वभावः ।।111।। एकास्याप्यनेक -स्वभावोप- लम्भादनेक स्वभावः ।।112।। गुण-गुण्यादि-संज्ञादि भेदाद्-भेद स्वभावः ।।113।। गुण-गुण्योद्येक-स्वभावादभेद-स्वभावः ।।114।। भाविकाले पर-स्वरूपाकार भवनाद्-भव्य-स्वभावः ।।115।। कालत्रयेऽपि परस्वरूपाकाराभवनादभव्य स्वभावः ।।116।।

गाथा

अण्णोण्णं पविसंता, दिंता ओग्गासमण्ण-मण्णस्स ।
मेलंता वि य णिच्चं, सग-सग भावं ण विजहंति ।।7।।

पारिणामिक-भाव-प्रधानत्वेन परम-स्वभावः ।।117।। प्रदेशादि गुणानां व्युत्पत्तिश्चेतनादि विशेष स्वभावानां च व्युत्पत्ति व्युत्पत्ति- र्निगदिता ।।118।। धर्मापेक्षया स्वभावा गुणा न भवन्ति ।।119।। स्वद्रव्य- चतुष्टया पेक्षया परस्परं गुणाः स्वभावा भवन्ति ।।120।। द्रव्याण्यपि भवन्ति ।।121।। स्वभावा-दन्यथा-भवनंविभावः ।।122।। शुद्धं केवल-भावमशुद्धं

तस्यापि विपरीतम्।।123।। स्वभावस्याप्यन्यत्रोपचारादुपचरित- स्वभावः।।124।। स द्वेधा कर्मज-स्वाभाविक-भेदात्-यथा जीवस्य मूर्तत्वमचेतनत्वं। यथा सिद्धात्मनां परज्ञता परदर्शकत्वं च।।125।। एव मितरेषां द्रव्याणामुपचारो यथा संभवो ज्ञेयः।।126।।

।। इति स्वभाव व्युत्पत्ति अधिकारः।।

"एकान्त पक्ष में दोष"

गाथा

दुर्नयैकान्त-मारुढा, भावानां स्वार्थिका हि ते।
स्वार्थिकाश्च विपर्यस्ताः, सकलङ्का नया यतः।।8।।

तत्कथं? ।127।। तथाहि-सर्वथैकान्तेन सद्-रुपस्य न नियतार्थ-व्यवस्था-संकरादि- दोषत्वात्।।128।। तथा-सद्रूपस्य सकल-शून्यता-प्रसंगात्।।129।। नित्यस्यैक-रूपत्वा-देक-रूपस्यार्थ-क्रिया-कारित्वाभावः अर्थक्रिया कारित्वाभावे द्रव्यस्याप्य भावः।।130।। अनित्य-पक्षेपि निरन्वयत्वात् अर्थ-क्रिया कारित्वाभावः अर्थ-क्रिया-कारित्वाभावे द्रव्यस्याप्य- भावः।।131।। एक-स्वरूपस्यै-कान्तेन विशेषा भावः सर्वथैक-रूपत्वात्। विशेषाभावे सामान्यस्याप्यभावः।।132।।

गाथा

निर्विशेषं हि सामान्यं, भवेत् खर-विषाणवत्।
सामान्य-रहित्वाच्च, विशेषस्तद्वदेव हि।।9।।

अनेक-पक्षेऽपि तथा द्रव्याभावो निराधारत्वात् आधाराधेया

भावाच्च।।133।। भेद-पक्षेऽपि विशेष स्वभावानां निराधारत्वादर्थ -क्रिया-कारित्वाभावः, अर्थक्रिया-कारित्वाभावे द्रव्यस्याप्य-भावः।।134।। अभेद-पक्षेऽपि सर्वेषामेकत्वम्, सर्वेषा-मेकत्वेऽर्थ-क्रिया-कारित्वाभावः अर्थ-क्रिया-कारित्वाभावे द्रव्यस्याप्य भावः।।135।। भव्यस्यैकान्तेन पारिणामि-कत्वात् द्रव्यस्य द्रव्यान्तरत्व प्रसङ्गात् सङ्करादि-दोष-सम्भवात्।।136।। सर्वथाऽभव्यस्यैकान्तेऽपि तथा शून्यता- प्रसङ्गात् स्वरूपेणाप्य भवनात्।।137।। स्वभाव-स्वरूपस्यैकान्तेन संसाराभावः ।।138।। विभाव-पक्षेऽपि मोक्ष-स्याप्य भावः।।139।। सर्वथा चैतन्य-मेवेत्युक्ते सर्वेषां शुद्ध-ज्ञान-चैतन्यावाप्तिः स्यात्, तथा सति ध्यानं ध्येयं ज्ञानं ज्ञेयं गुरुः शिष्याद्याभावः।।140।। सर्वथा शब्दः सर्व-प्रकार-वाची, अथवा सर्वकालवाची अथवा नियम-वाची वा, अनेकान्तसाक्षेपी वा? यदि सर्वप्रकार-वाची सर्वकाल-वाची अनेकान्त-वाची वा, सर्वादि-गणे पठनात् सर्वशब्द, एवं विधश्चेत्तर्हि सिद्धं नः समीहितम्। अथवा नियम-वाची चेत्तर्हि सकलार्थानां तव प्रतीतिः कथं स्यात्? नित्यः अनित्यः एकः अनेकः भेदः अभेदः कथं प्रतीतिः स्यात् नियमित् पक्षत्वात्?।।141।। तथाऽचैतन्य पक्षेऽपि सकल चैतन्योच्छेदः स्यात्।।142।। मूर्तस्यैकान्तेनात्मनो न मोक्षस्यावाप्तिः स्यात्।।143।। सर्वथाऽमूर्तस्यापि तथात्मनः संसार विलोपः स्यात्।।144।। एक-प्रदेशस्यैकान्तै-नाखण्ड परिपूर्ण स्यात्मनोऽनेककार्य कारित्व एव हानिः स्यात्।।145।। सर्वथाऽनेक प्रदेशत्वेऽपि तथा तस्यानर्थ कार्यकारित्वं स्वस्वभाव

शून्यता प्रसङ्गात्।।146।। शुद्धस्यैकान्तेनात्मनो न कर्ममल-कलङ्कावलेपः सर्वथा निरंजनत्वात्।।147।। सर्वथाऽशुद्धैकान्तेऽपि तथाऽत्मनो न कदापि शुद्ध-स्वभाव प्रसङ्गः स्यात् तन्यमयत्वात्।।148।। उपचरितैकान्त पक्षेऽपि नात्मज्ञता सम्भवति नियमित पक्षत्वात्।।149।। तथात्मनोऽनुचरित-पक्षेऽपि परज्ञतादीनां विरोधः स्यात्।।150।।

गाथा

नानास्वभाव-संयुक्तं, द्रव्यं ज्ञात्वा प्रमाणतः।
तच्च सापेक्ष-सिद्धयर्थं, स्यान्नय-मिश्रितं कुरु।।10।।

स्वद्रव्यादि-ग्राहकेणास्तिस्वभावः।।151।। परद्रव्यादि ग्राहकेण नास्तिस्वभावः।।152।। उत्पाद-व्य-गौणत्वेन-सत्ता ग्राहकेण नित्य-स्वभावः।।153।। केनचित्-पर्यायार्थि-केनानित्य स्वभावः।।154।। भेद-कल्पना-निरपेक्षेणैक स्वभावः।।155।। अन्वय द्रव्यार्थिकेनैकस्याप्यनेक-द्रव्य-स्वभावत्वम्।।156।। सद्भूत-व्यवहारेण गुण-गुण्यादिभिर्भेद स्वभावः।।157।। भेद-कल्पना-निरपेक्षेण गुण-गुण्यादिभिरभेद स्वभावः।।158।। परम-भाव-ग्राह-केण भव्याभव्य पारिणामिक स्वभावः।।159।। शुद्धाशुद्ध-परम-भाव-ग्राहकेण-चेतन-स्वभावो जीवस्य।।160।। असद्भूत-व्यवहारेण कर्म-नो-कर्मणोरपि चेतन स्वभावः।।161।। परम-भाव-ग्राहकेण कर्मनो-कर्मणोरचेतन स्वभावः।।162।। जीवस्याप्य सद्भूत व्यवहारेणा चेतन स्वभावः।।163।। परम-भाव-ग्राहकेण कर्मनो-कर्मणो मूर्त्त स्वभावः।।164।।

जीवस्याप्य-सद्भूत-व्यवहारेण मूर्त-स्वभावः ।।165।। परम-भाव-ग्राहकेण पुद्गलं विहाय इतरेषाममूर्त- स्वभावः ।।166।। पुद्गलस्यो-पचारा-देवास्त्य-मूर्त्तत्वम् ।।167।। परम-भाव-ग्राहकेण काल-पुद्गलाणूनामेक-प्रदेश- स्वभावत्वम् ।।168।। भेद कल्पना निरपेक्षेणेतरेषां चाखण्डत्वादेक प्रदेशत्वम् ।।169।। भेद कल्पना सापेक्षेण चतुर्णामपि नाना-प्रदेश-स्वभावत्वम् ।।170।। पुद्गलाणो-रूप-चारतो नाना-प्रदेशत्वम् न च कालाणोः स्निग्ध रुक्षत्वाभावात् ऋजुत्वाच्च ।।171।। अणोरमूर्त कालस्यैक-विंशतितमो भावो न स्यात् ।।172।। परोक्ष प्रमाणापेक्षयाऽसद् -भूत- व्यवहारेणाव्युप- चारेणामूर्तत्वं- पुद्गलस्य ।।173।। शुद्धाशुद्ध- द्रव्यार्थिकेन स्वभाव- विभावत्वम् ।।174।। शुद्ध द्रव्यार्थिकेन शुद्ध-स्वभावः ।।175।। अशुद्ध-द्रव्यार्थिकेनाशुद्ध स्वभावः ।।176।। असद्भूत-व्यवहारेण उपचरित- स्वभावः ।।177।।

गाथा

द्रव्याणां तु यथारूपं, तल्लोकेऽपि व्यवस्थितम् ।
तथा ज्ञानेन संज्ञातं, नयोऽपि हि तथाविधः ।।11।।

।।इति नययोजनः ।।

सकलवस्तु ग्राहकं प्रमाणं, प्रमीयते परिच्छिद्यते वस्तु-तत्त्वं येन ज्ञानेन तत्प्रमाणम् ।।178।। तद्द्वेधा सविकल्पेतर भेदात् ।।179।। सविकल्पं मानसं तच्चतुर्विधम् मति-श्रुतावधि मनः पर्यय-रूपम् ।।180।। निर्विकल्पं मनो रहितं केवलज्ञानम् ।।181।।

।। इति प्रमाण लक्षणाधिकारः ।।

"नय का लक्षण व भेद"

प्रमाणेन वस्तु संगृहीतार्थैकांशो नयः, श्रुतविकल्पो वा, ज्ञातुरभिप्रायो वा नयः, नाना स्वभावेभ्यो व्यावृत्य एकस्मिन् स्वभावे वस्तु नयति प्राप्नोतीति वा नयः।।182।। स द्वेधा सविकल्प-निर्विकल्प-भेदात्।।183।।

।। इति नयलक्षण अधिकारः।।

"निक्षेप की व्युत्पत्ति"

प्रमाण-नययोर्निक्षेपणं आरोपणं निक्षेपः स नामस्थापनादि भेदेन चतुर्विधः।।184।।

।। इति निक्षेप अधिकारः।।

"नयो के भेदों की व्युत्पत्ति"

द्रव्य मेवार्थः प्रयोजन-मस्येति द्रव्यार्थिकः।।185।। शुद्ध-द्रव्य-मेवार्थः प्रयोजन-मस्येति शुद्ध-द्रव्यार्थिकः।।186।। अशुद्ध-द्रव्य-मेवार्थः प्रयोजन-मस्येति अशुद्ध-द्रव्यार्थिकः ।।187।। सामान्य-गुणादयोऽन्वय-रूपेण द्रव्यं द्रव्यमिति व्यवस्थापयतीति -अन्वय-द्रव्यार्थिकः।।188।। स्वद्रव्यादि- ग्रहणमर्थः प्रयोजन-मस्येति स्वद्रव्यादि-ग्राहकः।।189।। परद्रव्यादि-ग्रहणमर्थः प्रयोजन-मस्येति पर-द्रव्यादि- ग्राहकः।।190।। परम-भाव-ग्रहणमर्थः प्रयोजन-मस्येति परम- भाव-ग्राहकः।।191।।

"पर्यायर्थिक नय का कथन"

पर्याय एवार्थः प्रयोजन-मस्येति पर्यायार्थिकः।।192।। अनादि-नित्य-पर्याय एवार्थः प्रयोजन-मस्येत्यानादि-नित्य-पर्यायार्थिकः।।193।। सादि-नित्य-पर्याय एवार्थः प्रयोजन-

मस्येति सादि-नित्य-पर्यायार्थिकः।।194।। शुद्ध पर्याय एवार्थः प्रयोजन-मस्येति शुद्ध-पर्यायार्थिकः।।195।। अशुद्ध-पर्याय एवार्थः प्रयोजन-मस्येत्यशुद्ध-पर्यायार्थिकः।।196।।

।। इति पर्यायाधिक नयः।।

"नैगमादि नय के लक्षण"

नैकं गच्छतीति निगमः, निगमो-विकल्प-स्तत्र भवो नैगमः।।197।। अभेद- रूपतया वस्तु-जातं संग्रहणातीति संग्रहः।।198।। संग्रहेण गृहीतार्थस्य भेद-रूप- तया वस्तु-व्यवह्रियत-इति व्यवहारः।।199।। ऋजु प्रांजलं सूत्रय-तीति ऋजुसूत्रः।।200।। शब्दात् व्याकरणात् प्रकृति प्रत्यय द्वारेण सिद्धः शब्दः शब्दनयः।।201।। परस्परेणाभि-रूढाः समभिरूढाः। शब्द-भेदेऽप्यर्थ-भेदो-नास्तिः यथा शक्र इन्द्रः पुरन्दर इत्यादयः समभिरूढाः।।202।। एवं क्रिया-प्रधानत्वेन भूयत इत्येवंभूतः।।203।। शुद्धाशुद्ध-निश्चयौ द्रव्यार्थिकस्य भेदौ।।204।। अभेदानुपचारितया वस्तु निश्चीयत इति निश्चयः।।205।। भेदोपचारितया वस्तु-व्यवह्रियत इति व्यवहारः।।206।। गुण गुणिनोः संज्ञादि-भेदात् भेदकः सद्भूत-व्यवहारः।।207।। अन्यत्र प्रसिद्धस्य धर्मस्यान्यत्र समारोपणमसद्भूत व्यवहारः।।208।। असद्भूत व्यवहार एवोपचारः, उपचारादप्युपचारं यः करोति स उपचरितासद्भूत व्यवहारः।।209।। गुण-गुणिनोः पर्याय-पर्यायिणोः स्वभाव स्वभाविनोः कारक-कारकिणो र्भेदः सद्भूत- व्यवहारस्यार्थः।।210।। 1. द्रव्ये द्रव्योपचारः,

2. पर्याये पर्यायोपचारः, 3. गुणे गुणोपचारः, 4. द्रव्ये गुणोपचारः, 5. द्रव्ये पर्यायोपचारः, 6. गुणे द्रव्योपचारः, 7. गुणे पर्यायोपचारः, 8. पर्याये द्रव्योपचारः, 9. पर्याये गुणोपचारः इति नवविधोपचारः असद्भूत व्यवहारस्यार्थो द्रष्टव्यः।।211।। उपचारः पृथग् नयो नास्तीति न पृथक् कृतः।।212।। मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्ते चोपचारः प्रवर्तते।।213।। सोऽपि सम्बन्धोऽविनाभावः, संश्लेषः सम्बन्धः, परिणाम परिणामि सम्बन्धः, श्रद्धा श्रद्धेय सम्बन्धः, ज्ञान-ज्ञेय-सम्बन्धः, चारित्रचर्या सम्बन्धश्चेत्यादि, सत्यार्थः असत्यार्थः सत्या सत्यार्थश्च चेत्युपचरिता सद्भूत व्यवहार-नयस्यार्थः।।214।।

।। इति नैगमादि नयस्य लक्षणः।।

"अध्यात्म भाषा से नयों का कथन"

पुनरप्यध्यात्म-भाषया नया उच्यन्ते।।215।। तावन्मूल-नयौद्वौ निश्चयो व्यवहारश्च।।216।। तत्र निश्चय-नयोऽभेद-विषयो, व्यवहारो भेद- विषयः।।217।। तत्र निश्चयो द्विविधः शुद्ध निश्चयोऽशुद्ध निश्चयश्च।।218।। तत्र निरूपाधिक -गुण-गुण्य-भेद-विषयकः शुद्ध-निश्चयो यथा केवलज्ञानादयो जीव इति।।219।। सोपाधिक-विषयोऽशुद्ध-निश्चयो यथा मति-ज्ञानादयो जीव इति।।220।। व्यवहारो द्विविधः सद्भूत व्यवहारोऽसद्भूत व्यवहारश्च।।221।। तत्रैक-वस्तु-विषयः सद्भूत- व्यवहारः।।222।। भिन्न-वस्तुविषयोऽसद्भूत-व्यवहारः।।223।। तत्र सद्भूत-व्यवहारो द्विविधः उपचरितानुप-चरित- भेदात्।।224।। तत्र सोपाधि-

गुण-गुणिनो-र्भेद विषयः उपचरित-सद्भूत-व्यवहारो यथा जीवस्य मति-ज्ञानादयो गुणाः।।225।। निरूपाधि -गुण-गुणिनो-र्भेद- विषयोऽनुप-चरित-सद्भूत-व्यवहारो यथा जीवस्य केवल-ज्ञानादयो गुणाः।।226।। असद्भूत व्यवहारो द्विविधः उपचरितानुप-चरित-भेदात्।।227।। तत्र संश्लेष-रहित -वस्तु-सम्बन्ध-विषय उपचरिता सद्भूत-व्यवहारो यथा देव-दत्तस्य धन -मिति।।228।। संश्लेष-सहित-वस्तु-सम्बन्ध-विषयोऽनुप-चरितासद्भूत- व्यवहारो यथा जीवस्य शरीरमिति।।229।।

।।इति अध्यात्म नयः।।

।। श्रीमद्देवसेनाचार्य विरचित आलाप पद्धति समाप्त हुई।।

✦ ✦ ✦

परीक्षामुखसूत्राणि

श्री मन्माणिक्यनन्दिविरचितानि

प्रमाणा दर्थ संसिद्धि स्तदाभासाद्विपर्ययः।
इति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्म, सिद्ध मल्पं लघीयसः।।1।।

"अर्थ प्रथमः समुद्देशः"

प्रमाण का लक्षण

स्वापूर्वार्थ व्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम्।।1।। हिताहितप्राप्ति-परिहारसमर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्।।2।। तन्निश्चयात्मकं समारोपविरूद्धत्वादनु- मानवत्।।3।। अनश्चितोऽपूर्वार्थः।।4।। दृष्टोऽपि समारोपात्तादृक।।5।। स्वोन्मुखतया प्रतिभासनं स्वस्य व्यवसायः।।6।। अर्थस्येव तदुन्मुखतया।।7।। घटमहमात्मना वेद्मि।।8।। कर्मवत्कर्तृ-करणक्रिया प्रतीतेः।।9।। शब्दानुच्चारणेऽपि स्वस्यानु-भवनमर्थवत्।।10।। को वा तत्प्रतिभासिन मर्थमध्यक्ष -मिच्छॅस्तदेव तथा नेच्छेत्।।11।। प्रदीपवत्।।12।। तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च।।13।।

"अथ द्वितीयः समुद्देशः"

प्रमाण के भेद व प्रत्यक्ष प्रमाण

तद्द्वेधा।।1।। प्रत्यक्षेतर भेदात्।।2।। विशदं प्रत्यक्षम्।।3।।

प्रतीत्यन्तराव्यवधानेन विशेषवत्तया वा प्रतिभासनं वैशद्यम्।।4।। इन्द्रिया निन्द्रय निमित्तं देशतः सांव्यवहारिकम्।।5।। नार्थालोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वात्तमोवत्।।6।। तदन्वयव्यतिरेकानु विधाना भावाच्च केशोण्डुक ज्ञान वन्नक्तंचर ज्ञानवच्च।।7।। अतज्जन्य मपि तत्प्रकाशकं प्रदीपवत्।।8।। स्वावरण क्षयोपशम- लक्षण योग्यतया हि प्रतिनियत मर्थ व्यवस्था पयति प्रत्यक्ष मिति शेषः।।9।। कारणस्य च परिच्छेद्यत्वे करणादिना व्यभिचारः।।10।। सामग्री विशेष-विश्लेषिताखिला वरण-मतीन्द्रिय-मशेषतो मुख्यम्।।11।। सावरणत्वे करण जन्यत्वे च प्रतिबन्ध सम्भवात्।।12।।

"अथ तृतीय परिच्छेदः"

परोक्षप्रमाण का लक्षण व भेद

परोक्षमितरत्।।1।। प्रत्यक्षादि निमित्तं स्मृति प्रत्यभि ज्ञानं-तर्कानुमानागम भेदं।।2।। संस्कारोद् बोध निबन्धना तदित्या कारा स्मृतिः।।3।। स देवदत्तो यथा।।4।। दर्शनस्मरण कारणकं सङ्कलनं प्रत्यभि ज्ञानं तदेवेदं तत्सदृशं तद्वि लक्षणं तत्प्रति योगीत्यादि।।5।। यथा स एवायं देवदत्तः गोसदृशो गवयः गोवि लक्षणो महिषः इदमस्माद् दूरं, वृक्षोऽय मित्यादि।।6।। उपलम्भानुपलम्भ निमित्तं व्याप्ति-ज्ञानमूहः।।7।। इदमस्मिन्सत्येव भवत्य सति तु न भवत्येव।।8।। यथाग्नावेव धूमस्तदा भावे न भवत्येवेति।।9।। साधनात्साध्य विज्ञान मनुमानम्।।10।। साध्याविना-भावित्वेन निश्चितो हेतुः।।11।।

सहक्रम भव- नियमोऽविनाभावः।।12।। सहचारिणो र्व्याप्य व्यापकयोश्च सहभावः।।13।। पूर्वोत्तर-चारिणोः कार्य कारणयोश्च क्रमभावः।।14।। तर्कात्तन्निर्णयः।।15।। इष्ट मबाधित मसिद्धं साध्यं।।16।। सन्दिग्ध विपर्यस्ता व्युत्पन्नानां साध्यत्वं यथा स्यादित्य सिद्धपदम्।।17।। अनिष्टाध्यक्षादि बाधितयोः साध्यत्वं मा भूदितीष्टा बाधि तवचनम्।।18।। न चासिद्ध वदिष्टं प्रतिवादिनः।।19।। प्रत्यायनाय हीच्छा वक्तुरेव।।20।। साध्यं धर्मः क्वचित्तद्विशिष्टो वा धर्मी।।21।। पक्ष इति यावत्।।22।। प्रसिद्धो धर्मी।।23।। विकल्पसिद्धे तस्मिन् सत्तेतरे साध्ये।।24।। अस्ति सर्वज्ञो, नास्ति खरविषाणम्।।25।। प्रमाणोभयसिद्धे तु साध्यधर्म विशिष्टता।।26।। अग्निमानयं देशः परिणामी शब्द इति यथा।।27।। व्याप्तौ तु साध्यं धर्मएव।।28।। अन्यथा तदघटनात्।।29।। साध्य धर्माधार सन्देहापनोदाय गम्यमानस्यापि पक्षस्य वचनम्।।30।। साध्यधर्मिणि साधनधर्मावबोधनाय पक्षधर्मोपसंहारवत्।।31।। को वा त्रिधा हेतु मुक्त्वा समर्थयमानो न पक्षयति।।32।। एतद्द्वयमेवानुमानाङ्गं नोदाहरणम्।।33।। न हि तत्साध्य प्रतिपत्त्यङ्गं तत्र यथोक्त-हेतोरेव व्यापारात्।।34।। तद्विनाभाव-निश्चयार्थ वा विपक्षे बाधक प्रमाणा बलादेव देव तत्सिद्धेः।।35।। व्यक्तिरूपं च निदर्शन सामान्येन तु व्याप्तिस्तत्रापि तद्विप्रतिपत्ता-वनवस्थानं स्याद् दृष्टान्तान्त-रापेक्षाणात्।।36।। नापि व्याप्ति स्मरणार्थ तथाविध

हेतुप्रयोगा देव तत्स्मृतेः।।37।। तत्परमभिधीयमानं साध्य धार्मिणि साध्य साधने सन्देहयति।।38।। कुतोऽन्यथोपनयनिगमने।।39।। न च ते तदंगे, साध्य-धर्मिणि हेतु साध्ययोर्वचनादेव संशयात्।।40।। समर्थनं वा वरं हेतुरूपमनुमानावयवो वास्तु साध्ये तदुपयोगात्।।41।। बाल-व्युत्पत्यर्थं तत्त्रयोपगमे शास्त्र एवासौ न वादेऽनुपयोगात्।।42।। दृष्टान्तो द्वेधा, अन्वयव्यतिरेक भेदात्।।43।। साध्य व्याप्तं साधनं यत्र प्रदर्श्यते सोऽन्वय दृष्टान्तः।।44।। साध्याभावे साधनाभावो यत्र कथ्यते स व्यतिरेक दृष्टान्तः।।45।। हेतोरूपसंहार उपनयः।।46।। प्रतिज्ञायास्तु निगमनं।।47।। तदनुमानं द्वेधा।।48।। स्वार्थपरार्थभेदात्।।49।। स्वार्थमुक्तलक्षणम्।।50।। परार्थ तु तदर्थपरामर्शि-वचनाज्जातम्।।51।। तद्वचनमपि तद्धेतुत्वात्।।52।। स हेतुर्द्वेधोपलब्ध्यनुपलब्धिभेदात्।।53।। उपलब्धिर्विधिप्रतिषेधयोर-नुपलब्धिश्च।।54।। अविरूद्धोपलब्धि र्विधौषोढा-व्याप्यकार्यकारण-पूर्वोत्तरसहचरभेदात्।।55।। रसादेक-सामग्रयनुमानेन रूपानुमान-मिच्छदिभरिष्टमेव किञ्चित्कारणं हेतुर्यत्र सामर्थ्याप्रतिबन्ध- कारणान्तरावैकल्ये।।56।। न च पूर्वोत्तरचारिणो-स्तादात्म्यं तदुत्पत्तिर्वा कालं व्यवधाने तदनुपलब्धेः।।57।। भाव्यतीतयोर्मरण- जाग्रद्बोधयोरपि नारिष्टोद्बोधौ प्रति हेतुत्वम्।।58।। तद्व्यापाराश्रितं हि तद्भावभावित्वम्।।59।। सहचारिणोरपि परस्पर परिहारेणाव

स्थानात्सहोत्पादाच्च।।60।। परिणामी शब्दः कृतकत्वात्, य एवं, स एवं दृष्टो, यथा घटः, कृतकश्चायं तस्मात्परिणामीति, यस्तु न परिणामी स न कृतको दृष्टोः यथा वन्ध्यास्तनन्धयः कृतकश्चायं, तस्मात्परिणामीति यस्तु न परिणामी स न कृतको दृष्टोः यथा वन्ध्यास्त नन्धयः कृतकश्चायं तस्मात्परिणामी।।61।। अस्त्यत्र देहिनि बुद्धि ब्यहारादेः।।62।। अस्त्यत्रच्छाया छत्रात्।।63।। उदेष्यति शकटं कृत्तिकोदयात्।।64।। उद्गाद्भरणिः प्राक्तत एव।।65।। अस्त्यत्र मातुलिङ्गे रूपं रसात्।।66।। विरूद्धतदुपलब्धिः प्रतिषेधे तथा।।67।। नास्त्यत्र शीतस्पर्शः औष्ण्यात्।।68।। नास्त्यत्र शीतस्पर्शः धूमात्।।69।। नास्मिन् शरीरिणि सुखमस्ति हृदयशल्यात्।।70।। नोदेष्यति मूहूर्त्तान्ते शकटं, रेवत्युदयात्।।71।। नोदगाद्भरणी मुहूर्तात्परं पुष्योदयात्।।72।। नास्त्यत्र भित्तौ परभागाभावोऽर्वाग्भाग- दर्शनात्।।73।। अविरुद्धानुपलब्धिः प्रतिषेधे सप्तधा स्वभाव व्यापक कार्य कारण-पूर्वोत्तर सहचरानुपलम्भभेदात्।।74।। नास्त्यत्र भूतले घटोऽनुप-लब्धेः।।75।। नास्त्यत्र शिंशपा वृक्षानुपलब्धेः।।76।। नास्त्यत्रा प्रतिबद्धसामर्थ्योऽग्नि-र्धूमानुपलब्धेः।।77।। नास्त्यत्र धूमोऽनग्नेः।।78।। न भविष्यति मुहूर्तान्ते शकटं कृतिकोदयानुपलब्धेः।।79।। नोद्गाद्भरणिः मुहूर्तात्प्राक् तत एव।।80।। नास्त्यत्र समतुलायामुन्नामो नामानुपलब्धेः।।81।। विरुद्धानुपलब्धि र्विधौ त्रेधा विरुद्ध-कार्यकारण - स्वभावानुपलब्धि भेदात्।।82।। यथास्मिन्प्राणिनि व्याधि

विशेषोऽस्ति निरामय चेष्टानुपलब्धेः।।83।। अस्त्यत्रदेहिनि दुःखमिष्टसंयोगा-भावात्।।84।। अनेकान्तात्मकं वस्त्वेकान्तस्व-रूपानुपलब्धेः।।85।। परम्परा संभवत्साधन मत्रैवान्तर्भावनीयम्।।86।। अभूदत्र चक्रे शिवकः स्थासात्।।87।। कार्यकार्यमविरुद्धकार्योपलब्धौ।।88।। नास्त्यत्र गुहायां मृगक्रीडनं मृगारिसं-शब्दनात्, कारणविरुद्धकार्यं विरुद्धकार्योपलब्धौ यथा।।89।। व्युत्पन्नप्रयोगस्तु तथोपपत्त्याऽन्यथानुपपत्त्यैव वा।।90।। अग्निमानयं देशस्तथैव धूमवत्त्वोपपत्तो धूमिवत्त्वान्यथा-नुपपत्तेर्वा।।91।। हेतु प्रयोगो हि यथा व्याप्तिग्रहणं विधीयते सा च तावन्मात्रेण व्युत्पन्नैर वधार्यते।।92।। तावता च साध्य सिद्धिः।।93।। तेन पक्षस्तदाधार-सूचनायोक्तः।।94।। आप्तवचनादि निबन्धन-मर्थज्ञानमागमः।।95।। सहज योग्यता संकेतवशाद्धि शब्दादयो वस्तु प्रतिपत्तिहेतवः।।96।। यथा मेर्वादयः सन्ति।।97।।

"अर्थ चतुर्थः परिच्छेदः"

प्रमाण का विषय

सामान्य विशेषात्मा तदर्थो विषयः।।1।। अनुवृत्तव्यावृत्त प्रत्यय गोचरत्वात्पूर्वोत्तराकार परिहारावाप्ति स्थितिलक्षण-परिणामेनार्थक्रियो- पपत्तेश्च।।2।। सामान्यं द्वेधा तिर्यगूर्ध्वता-भेदात्।।3।। सदृश-परिणामस्तिर्यक् खण्डमुण्डादिषु गोत्ववत्।।4।। परापरविवर्तव्यापिद्रव्य मूर्ध्वता मृदिव

स्थासादिषु ।।5।। विशेषश्च ।।6।। पर्यायव्यतिरेकभेदात् ।।7।। एकस्मिन्द्रव्ये क्रमभाविनः परिणामाः पर्यायः आत्मनि हर्षविषादादिवत् ।।8।। अर्थान्तरगतो विसदृश परिणामो व्यतिरेको गोमहिषादिवत् ।।9।।

"अथ पञ्चमः परिच्छेद"

प्रमाण का विषय

अज्ञाननिवृत्तिर्हानोपादानोपेक्षाश्च फलम् ।।1।। प्रमाणाद-भिन्नं-भिन्नं च ।।2।। यः प्रमिमीते स एव निवृत्ताज्ञानो जहात्यादत्त उपेक्षते चेति प्रतीतेः ।।3।।

"अथ षष्ठः परिच्छेद"

प्रमाणाभास के स्वरूप

ततोऽन्यत्तदाभासम् ।।1।। अस्वसंविदित-गृहीतार्थ-दर्शन संशयादयः प्रमाणाभासः ।।2।। स्वविषयोपदर्शकत्वा-भावात् ।।3।। पुरुषान्तर-पूर्वार्थगच्छत्तृणस्पर्श स्थाणु पुरुषादि ज्ञानवत् ।।4।। चक्षु रसयोर्द्रव्ये संयुक्त- समवायवच्च ।।5।। अवैशद्ये प्रत्यक्षं तदाभासं बौद्धस्याकस्माद् धूमदर्शनाद् वह्नि विज्ञानवत् ।।6।। वैशद्येऽपि परोक्षं तदाभासं मीमांसकस्य करणज्ञानवत् ।।7।। अतस्मिंस्तदिति ज्ञानं स्मरणाभासं, जिनदत्ते स देवदत्तो यथा ।।8।। सदृशे तदेवेदं तस्मिन्नेव तेन सदृशं यमलकवदित्यादि प्रत्यभि- ज्ञानाभासम् ।।9।। असंबद्धे तज्ज्ञानं तर्काभासं ।।10।। इदमनुमानाभासम् ।।11।। तत्रानिष्टादिः पक्षाभासः ।।12।। अनिष्टो मीमांसकस्यानित्यः शब्दः ।।13।। सिद्धः श्रावणः शब्दः ।।14।। बाधितः

प्रत्यक्षानुमानागमलोक- स्ववचनैः ।।15।। तत्र प्रत्यक्षबाधितो यथा अनुष्णोऽग्निर्द्रव्यत्वा- ज्जलवत्।।16।। अपरिणामी शब्दः कृत्वकत्वाद् घटवत्।।17।। प्रेत्यासुखप्रदो धर्मः पुरुषाश्रितत्वादधर्मवत्।।18।। शुचि नर-शिरः कपालं प्राण्यङ्गत्वाच्छंख-शुक्तिवत्।।19।। माता मे बन्ध्या, पुरुष संयोगेऽप्यगर्भत्वात् प्रसिद्ध बन्ध्यावत्।।20।। हेत्वाभास असिद्ध- विरुद्धानैकान्तिकाकिञ्चित्कराः।।21।। असत्सत्तानिश्चयोऽसिद्धः।।22।। अविद्यमानसत्ताकः परिणामी शब्दः चाक्षुषत्वात्।।23।। स्वरूपेणासत्वात्।।24।। अविद्यमान निश्चयो मुग्ध बुद्धिं प्रत्यग्निरत्रधूमात्।।25।। तस्य वाष्पादिभावेन भूतसंघाते संदेहात्।।26।। सांख्यं प्रति परिणामी शब्दः कृतकत्वात्।।27।। तेनाज्ञातत्वात्।।28।। विपरीत-निश्चिताविनाभावो विरुद्धोऽपरिणामी शब्दः कृतकत्वात्।।29।। विपक्षेऽप्यविरुद्धवृत्तिरनैकान्तिकः।।30।। निश्चितवृत्तिरनित्यः शब्दः प्रमेयत्वात् घटवत्।।31।। आकाशे नित्येऽप्यस्य निश्चयात्।।32।। शंकित वृत्तिस्तु नास्ति सर्वज्ञो वक्तृत्वात्।।33।। सर्वज्ञत्वेन वक्तृत्वाविरोधात्।।34।। सिद्धे प्रत्यक्षादि बाधिते च साध्ये हेतुरकिंञ्चित्करः।।35।। सिद्धः श्रावणः शब्दः शब्दत्वात्।।36।। किंञ्चिदकरणात्।।37।। यथाऽनुष्णोऽग्निर्द्रव्यत्वादित्यादौकिञ्चत्कर्तु मशक्यत्वात्।।38।। लक्षण एवासौ दोषो व्युत्पन्न प्रयोगस्य पक्षदोषेणैव दुष्टत्त्वात्।।39।। दृष्टान्ताभासा अन्वयेऽसिद्धसाध्यसाधनोभयाः।।40।। अपौरुषेयः शब्दोऽमूर्तत्वादिन्द्रिय सुख

परमाणु घटवत्।।41।। विपरीतान्वयश्च यदपौरुषेयं तदमूर्त्तम्।।42।। विद्युदादिनाऽतिप्रसङ्गात्।।43।। व्यतिरेकेऽसिद्धतद्व्यतिरेकाः परमाण्विन्द्रियसुखाकाशवत्।।44।। विपरीत व्यतिरेकश्च यन्नामूर्तं तन्नापौरुषेयम्।।45।। बालप्रयोगाभासः पञ्चावयवेषु कियद्धीनता।।46।। अग्निमानयं प्रदेशो धूमत्वाद्यदित्थं तदित्थं यथा महानस इति।।47।। धूम-वांश्चायमिति वा।।48।। तस्मादग्निमान् धूमवांश्चामिति।।49।। स्पष्टतया प्रकृतप्रतिपत्तेरयोगात्।।50।। रागद्वेषमोहाक्रान्त-पुरुषवचना- ज्जातमागमाभासम्।।51।। यथा नद्यास्तीरे मोदकराशयः सन्ति, धावध्वं माणवकाः।।52।। अङ्गुल्यग्रे हस्तियूथशतमास्ते इति च।।53।। विसंवादात्।।54।। प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणमित्यादि संख्याभासम्।।55।। लौकायतिकस्य प्रत्यक्षतः परलोकादि निषेधस्य परबुद्धयादेश्चासिद्धेरतद्विषयत्वात्।।56।। सौगत-सांख्ययौगप्रभाकर जैमिनीयानां प्रत्यक्षानुमानागमोपमानार्थापत्त्या-भावैरे कैकाधिकैः व्याप्तिवत्।।57।। अनुमानादेरस्तद्विषयत्वे प्रमाणान्तरत्वम्।।58।। तर्कस्येव व्याप्तिगोचरत्वे प्रमाणान्तर-त्वमप्रमाणस्या व्यवस्थापकत्वात्।।59।। प्रतिभास भेदस्य च भेदकत्वात्।।60।। विषयाभासः सामान्यं विशेषो द्वयं वा स्वतंत्रम्।।61।। तथाऽप्रति-भासनात्कार्याकरणाच्च।।62।। समर्थस्य करणे सर्वदोत्पत्तिरनपेक्षत्वात्।।63।। परापेक्षणे परिणामित्व-मन्यथा तदभावात्।।64।। स्वयमसमर्थस्या-कारकत्वात्पूर्ववत्।।65।। फलाभासं प्रमाणादभिन्नं भिन्नमेव

वा।।66।। अभेदे तद्व्यवहारानुपपत्तेः।।67।। व्यावृत्त्यापि न तत्कल्पना फलान्तरा द्व्यावृत्याऽफलत्वप्रसंगात्।।68।। प्रमाणान्तराद्-व्यावृत्ये वा प्रमाणत्वस्य।।69।। तस्माद्वास्तवो भेदः।।70।। भेदेत्वात्मान्तर- वत्तदनुपपत्तेः।।71।। समवायेऽतिप्रसंग।।72।। प्रमाणतदाभासौ दुष्टतयोद्भावितौ परिहृता परिहृतदोषौ वादिनः साधनतदाभासौ प्रतिवादिनो दूषणभूषणे च।।73।। सम्भवदन्यद्विचारणीयम्।।74।।

परीक्षामुखमादर्शं, हेयोपोदयतत्त्वयोः।
संविदे मादृशो बालः, परीक्षादक्षवद्व्यधाम।।

।। इति प्रमाणास्याभासोद्दशः षष्ठः।।

इति परीक्षामुखसूत्राणि समाप्तानि

✦ ✦ ✦

गुरु की डाँट सफलता की सीढ़ी है और उपेक्षा असफलता की फिसलपट्टी, अतः गुरु की डाँट अच्छी है पर उपेक्षा नहीं।

* * *

सहनशीलता-साधना की प्रथम सीढ़ी है।

* * *

अनुशासनशीलता, कर्तव्यनिष्ठा और विश्वासनीयता ये 3 ऐसे गुण हैं जिन्हें देखकर गुरु खुश होते हैं।

* * *

सुधार की दृष्टि से गुरु के पास किसी की शिकायत करना चुगली नहीं, परोपकार है।

* * *

"सम्मेद शिखर टोकों की अर्चना"

24 तीर्थंकरों के गणधरों की कूट

दोहा : चौबीसों जिनराज के गणनायक हैं जेह,
मन वच तन कर पूजहूँ शिखर सम्मेद यजेह।

ॐ ह्रीं श्री गौतमस्वामी आदि गणधर देव ग्राम के उद्यान आदि भिन्न स्थानों से निर्वाण पधारे हैं जिनके चरणारविन्द को मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार हो।

तीर्थंकर	कूट	कूट से मोक्ष जाने वाले मुनि महाराज
कुन्थुनाथ	ज्ञानधर कूट	96 कोड़ाकोड़ी 96 करोड़ 32 लाख 96 हजार 742 मुनि
नमिनाथ	मित्रधर कूट	9 कोड़ाकोड़ी 1 अरब 45 लाख 7 हजार 942 मुनि
अरहनाथ	नाटक कूट	99 करोड़ 99 लाख 99 हजार 999 मुनि (1कम 1 अरब)
मल्लिनाथ	संबल कूट	96 करोड़ मुनि
श्रेयांसनाथ	संकुल कूट	96 कोड़ाकोड़ी 96 करोड़ 96 लाख 9 हजार 542 मुनि
पुष्पदंत	सुप्रभ कूट	1 कोड़ाकोड़ी 99 लाख 7 हजार 780 मुनि
पद्मप्रभ	मोहन कूट	99 करोड़ 87 लाख 43 हजार 757 मुनि
मुनिसुव्रतनाथ	निरजरकूट	99 कोड़ाकोड़ी 99 करोड़ 99 लाख 595 मुनि
चन्द्रप्रभ	ललितकूट	984 अरब 2 करोड़ 80 लाख 4 हजार 595 मुनि

ऋषभदेव	आदिनाथ	10 हजार मुनि कैलाश पर्वत से सिद्ध भये
शीतलनाथ	विद्युतवर कूट	18 कोड़ाकोड़ी 42 करोड़ 32 लाख 42 हजार 905 मुनि
अनंतनाथ	स्वयंप्रभकूट	96 कोड़ाकोड़ी 70 करोड़ 70 लाख 70 हजार 700 मुनि
संभवनाथ	धवल कूट	9 कोड़ाकोड़ी 12 लाख 42 हजार 500 मुनि
श्री वासूपूज्य	वासूपूज्य टोंक	1 हजार मुनि चंपापुर मंदारगिरि से मोक्ष गये
अभिनंदननाथ	आनंद कूट	72 कोड़ाकोड़ी 70 करोड़ 70 लाख 42 हजार 700 मुनि
धर्मनाथ	सुदत्तवर कूट	29 कोड़ाकोड़ी 19 करोड़ 9 लाख 9 हजार 765 मुनि
सुमतिनाथ	अविचल कूट	1 कोड़ाकोड़ी 84 करोड़ 72 लाख 81 हजार 781 मुनि
शांतिनाथ	कुन्दप्रभ कूट	9 कोड़ाकोड़ी 9 लाख 9हजार 999 मुनि
महावीरस्वामी	महावीर टोंक	26 मुनिपावापुर के पद्म सरोवर से
सुपार्श्वनाथ	प्रभास कूट	49 कोड़ाकोड़ी 84 करोड़ 72 लाख 7 हजार 742 मुनि
विमलनाथ	सुवीर कूट	70 कोड़ाकोड़ी 60 लाख 6 हजार 742 मुनि
अजितनाथ	सिद्धवर कूट	1 अरब 80 करोड़ 54 लाख मुनि
नेमिनाथ	नेमिनाथ टोंक	शंबु, प्रद्युम्न, अनिरूद्ध इत्यादि 72 करोड़ 700 मुनि गिरनारजी से
पार्श्वनाथ	स्वर्णभद्र कूट	82 करोड़ 84 लाख 45 हजार 742 मुनि

नित्य नैमित्तिक जाप

1. 35 अक्षर का मंत्र-

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं।।

2. 16 अक्षर का मंत्र-

अरिहन्त-सिद्ध, आयरिय-उवज्झाय-साहू।

3. 6 अक्षर का मंत्र - अरहन्त-सिद्ध।
4. 5 अक्षर का मंत्र - अ सि आ उ सा।
5. 4 अक्षर का मंत्र - अरिहन्त।
6. 2 अक्षर का मंत्र - सिद्ध।
7. 1 अक्षर का मंत्र - अ, ओम।

अष्टाह्निका व्रत

समुच्चयः- ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर संज्ञाय नमः।

1. ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वर संज्ञाय नमः।
2. ॐ ह्रीं अष्ट महाविभूति संज्ञाय नमः।
3. ॐ ह्रीं त्रिलोक सार संज्ञाय नमः।
4. ॐ ह्रीं चतुर्मुख संज्ञाय नमः।
5. ॐ ह्रीं पञ्च महा लक्षण संज्ञाय नमः।
6. ॐ ह्रीं स्वर्ग सोपान संज्ञाय नमः।
7. ॐ ह्रीं सिद्धचक्र संज्ञाय नमः।
8. ॐ ह्रीं इन्द्रध्वज संज्ञाय नमः।

षोडशकारणव्रत

समुच्चयः- ॐ ह्रीं श्रीषोडशकारणभावनेभ्यो नमः।

1. ॐ ह्रीं श्री दर्शन विशुद्धये नमः।
2. ॐ ह्रीं श्रीविनय सम्पन्नतायै नमः।

3. ॐ ह्रीं श्रीशीलव्रतेष्व नतिचाराय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगाय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री संवेगाय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री शक्ति तस्त्यागाय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री शक्ति तस्तपसे नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री साधु समाध्यै नमः।
9. ॐ ह्रीं श्री वैया वृत्य करणाय नमः।
10.ॐ ह्रीं श्री अर्हद् भक्तये नमः।
11.ॐ ह्रीं श्री आचार्य भक्तये नमः।
12.ॐ ह्रीं श्री बहुश्रुत भक्तये नमः।
13.ॐ ह्रीं श्री प्रवचन भक्तये नमः।
14.ॐ ह्रीं श्री आवश्यका परिहाण्यै नमः।
15.ॐ ह्रीं श्री मार्ग प्रभावनाये नमः।
16.ॐ ह्रीं श्री प्रवचन वत्सलत्वाय नमः।

दशलक्षणव्रत

समुच्चयः- ॐ ह्रीं श्री उत्तम क्षमा मार्द वार्ज वशौच सत्य संयम-तपस्त्यागा किंचन्य ब्रह्मचर्य धर्मांगाय नमः।

1. ॐ ह्रीं श्री उत्तम क्षमा धर्माङ्गाय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री उत्तम मार्दव धर्माङ्गाय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री उत्तम आर्जव धर्माङ्गाय नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री उत्तम शौच धर्माङ्गाय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री उत्तम सत्य धर्माङ्गाय नमः।
6. ॐ ह्रीं श्री उत्तम संयम धर्माङ्गाय नमः।
7. ॐ ह्रीं श्री उत्तम तप धर्माङ्गाय नमः।
8. ॐ ह्रीं श्री उत्तम त्याग धर्माङ्गाय नमः।

9. ॐ ह्रीं श्री उत्तम आकिंचन्य धर्माङ्गाय नमः।

10.ॐ ह्रीं श्री उत्तम ब्रह्मचर्य धर्माङ्गाय नमः।

पंचमेरुव्रत

1. ॐ ह्रीं श्री सुदर्शन मेरु जिन चैत्यालयेभ्यो नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री विजय मेरु जिन चैत्यालयेभ्यो नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री अचल मेरु जिन चैत्यालयेभ्यो नमः।
4. ॐ ह्रीं श्री विद्युन्मालि जिन चैत्यालयेभ्यो नमः।
5. ॐ ह्रीं श्री मन्दर मेरु जिन चैत्यालयेभ्यो नमः।

रत्नत्रयव्रत

1. ॐ ह्रीं श्री अष्टांग सम्यग्दर्शनाय नमः।
2. ॐ ह्रीं श्री अष्टांग सम्यग्ज्ञानाय नमः।
3. ॐ ह्रीं श्री त्रयोदश प्रकार सम्यक् चारित्राय नमः।

सुख शान्ति हेतु प्रतिदिन जाप करें।

रविवार ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।

सोमवार ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय नमः।

मंगलवार ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय नमः।

बुधवार ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्राय नमः।

गुरुवार ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय नमः।

शुक्रवार ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंत जिनेन्द्राय नमः।

शनिवार ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः।

✦ ✦ ✦

दिन का चौघड़िया

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल
चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ
लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग
काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल
शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ
रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत
उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल

रात्रि का चौघड़िया

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ
अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग
चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ
रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत
काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल
लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल
शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ

किस गांव को एवं किस व्यक्ति को कौन से तीर्थंकर मूलनायक मन्दिर में या घर में रखना चाहिये।

ये राशि वाले (गांव या व्यक्ति)	ये तीर्थंकर रखें
तुला,मकर,मीन	भगवान आदिनाथ
वृषभ,वृश्चिक,कुंभ,मीन	भगवान अजितनाथ
वृषभ,वृश्चिक,सिंह,मकर,कुंभ	भगवान संभवनाथ
मेष,मिथुन,सिंह,कन्या,धनु,मीन	भगवान अभिनंदननाथ
मिथुन,सिंह,वृश्चिक	भगवान सुमतिनाथ
मिथुन,कन्या,वृश्चिक,धनु,मीन	भगवान पद्मप्रभु
मेष,तुला,धनु,मकर	भगवान सुपार्श्वनाथ
वृषभ,सिंह,वृश्चिक,मकर,कुंभ	भगवान चन्द्रप्रभु
धनु,कुंभ,मीन	भगवान पुष्पदन्त
तुला,मकर,मीन	भगवान शीतलनाथ
तुला,मकर,मीन	भगवान श्रेयांसनाथ
वृषभ,धनु,कुंभ	भगवान वासुपूज्य
धनु,मकर,मीन	भगवान विमलनाथ
धनु,मकर,मीन	भगवान अनन्तनाथ
मेष,वृषभ,कर्क,कन्या,तुला,मकर	भगवान धर्मनाथ
मेष,कर्क,तुला,मकर,कुंभ	भगवान शांतिनाथ
वृषभ,वृश्चिक,कुंभ,मीन	भगवान कुंथुनाथ
वृषभ,वृश्चिक,कुंभ,मीन	भगवान अरहनाथ
मेष,कर्क,तुला,मकर,कुंभ	भगवान मल्लिनाथ
तुला,मकर,मीन	भगवान मुनिसुव्रतनाथ
मेष,तुला,धनु,मकर	भगवान नमिनाथ
मिथुन,कन्या,वृश्चिक,धनु,मीन	भगवान नेमिनाथ
मेष,तुला,धनु,मकर	भगवान पार्श्वनाथ
मिथुन,कन्या,वृश्चिक,धनु,मीन	भगवान महावीर

दिन दिशा फल

1. शुक्र का उदय जिस दिशा में हो उसे शुक्र की सन्मुख दिशा जानना चाहिए।
2. वत्स प्रयाण प्रवेश में दाँया बाँया वास शुभ पृष्ठ और सन्मुख वास वर्ज्य हैं।
3. जिस दिशा में दिशा नक्षत्र शूल के सामने काल आदि हो उस दिशा में उस दिन नहीं जाना चाहिए परन्तु सन्मुख चंद्र में हो तो सर्व दोष नाश को प्राप्त होता है।
4. चन्द्र सन्मुख हो तो सफलता, दायाँ-लाभ, पीछे-कष्ट व बाँया-विघ्न करता है।
5. योगिनी बायाँ-सुख, पीछे-इच्छित लाभ, दाँया-धननाश, सम्मुख-मृत्यु।
6. वारशूल परिहार बुधवार को अहोरात्रि काल रहता है। अन्यदिन सूर्योदय से सूर्यास्त तक वार शूल रहता है।
7. पंचक में दक्षिण दिशा में गमन नहीं करना चाहिए।

	सोमवार	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र
1.	-	3,8,13	2,7,12	5,10,15	1,6,11
2.	प.द.वा.	पू.द.आ.	द.पू.नै.	पू.उ.ई.	पू.उ.ई.
3.	पू.उ.वा.	उ.प.वा.	उ.प.ई.	द.पू.नै.	प.द.नै.
4.	दर्पण	गुड़	खांड	राई	वायडिंग
5.	खीर	दलिया	दूध	दही	दूध/दही
6.	11	5	3	6	8
7.	6	7	2	8	9
8.	6	7	8	9	10
9.	2,7,12	1,6,11	3,8,13	4,9,14	2,7,12
10.	9	6			13
11.	7.30 से 9 तक	3 से 4.30	12 से 1.30तक	1.30 से 3 तक	10 से 12 तक
12.	10.30 से 12 तक	9 से 10.30	7.30 से 9 तक	6 से 7.30	3.30 से 4 तक
13.	1.30 से 3 तक	12.30 से 1.30	10.30 से 12 तक	9.00 से 10.30	7.30 से 9 तक

8. भद्रा में किसी भी दिशा में गमन नहीं करना चाहिए।

9. रात्रि में दिशा शूल का विचार नहीं माना जाता है।

10. सूर्योदय यदि 6.00 बजे हो तो ये समय जानना चाहिए।

11. रात्रि में दाँया अशुभ वय स्वर शुभ होता है। दिन में बाँया अशुभ दाँया स्वर शुभ होता है।

12. उभय स्वरों में कोई भी शुभ कार्य नहीं करे।

13. यमघट काल, गुलीककाल शुभ कार्यो में वर्ज्य है लेकिन शुभयोग शुभ लग्न मिलने पर ग्राह्य है।

14. राहू काल यात्रा, नया शुभ कार्य सरकारी कानून संबंधी कार्यो के लिए अविष्ट माना गया है।

शनि	रवि	संज्ञा	फल
4,4,14		सिद्धयोग	सफलता
प.द.ने.	पू.उ.आ.	यात्रा	शुभ
पू.उ.ई.	प.वा.	यात्रा	अशुभ
दही	पान	परिहार(1)	
तिल/चावल	दही/शक्कर	परिहार(2)	
9	12	दग्धतिथि	अशुभ
7	4	विषयोग	अशुभ
11	12	धुतावृतियोग	अशुभ
5,10,15	1,6,11	मृत्युयोग	अशुभ
	8	विशेष	शुभ
9 से	4.30 से	राहूकाल	अशुभ
10.30 तक	6 तक	सिद्धयोग	
1.30 से	12.30	यमघटकाल	अशुभ
3 तक	1.30 तक		
6 से	3.00 से	गुलीककाल	अशुभ
7.30 तक	4.30 तक		

	पूर्व दिशा	आग्नेय	दक्षिण	नैऋत्य	
1.	राहू देनिक	सूर्योदय के 31/2से4 पहर बाद (प्रातः.3से9)	सूर्यो.के 2से21/2 पहर बाद	सूर्यो.के 1/2से1 पहर बाद दो.(9से3)	सूर्यो.के 3से31/2 पहर बाद
2.	राहू गमन	शनिवार	मंगलवार	शुक्रवार	रविवार
3.	राहू मास	मार्ग,पौष,माघ		फा.चै.वैसा	
4.	वहस मास	कन्या तुला.वृ.		धन,मक. कुंभ	
5.	योगिनी	1/9	3/11	5/11	4/11
6.	सन्मुखचन्द्र	मेष,सिंह	धन	वृष. कन्या	मकर
7.	नक्षत्र शूल	ज्ये.,पू.षा.	उ.षा.	पू.भा.विशा	श्रव.धनि
8.	वार शूल	शनि/सोम	सोम/गुरु	गुरु	रवि
9.	समय	प्रातः		मध्यान्त	
10.	सन्मुखकाल	शनि	शुक्र	गुरु	बुध
11.	शुभवार	र.म.बु.शुक्र		सो.मं.बु.श.	
12.	अशुभवार	सो.गु.श.		र.गु.शुक्र	
13.	मिश्रवार	गु.		र.शुक्र	
14.	शुभस्वर	वांया		दांया	
15.	अशुभस्वर	दांया		बांया	

पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान
सूर्यो.के.	सूर्यो.	सूर्यो.के.	सूर्यो.के.
11/2से2	के. 1/2	21/2से3	1से11/2
पहर बाद		पहर बाद	पहर बाद
पहर बाद			
(सायं 3से9)		रात्रि9से3	
बुधवार		सोमवार	गुरुवार
ज्ये.आ.श्रा.		भा.आ.का	
मीन,मेष,	वृषभ	मिथु.,कर्क	
		सिंह	
6/14	7/15	2/10	8/30
मिथुन,तुला	कुं.कर्क.वृषि	मीन	
रोहि.पुष्पमृग	रोहि.पुष्पमृग	पू.फा.उ.का	हस्ता
			विशाखा
रवि/शुक्र	मंगल	मंगल/शनि	बुध/शनि
संध्या	मध्यरात्रि		
मंगल	सोम	रवि	
सो.गु.शनि		र.गु.शुक्र	
र.मं.बु.शुक्र		सो.मं.बु.श.	
मं.बु.		सो.शनि	
दांया		वांया	
वांया		दांया	

भक्ष्य पदार्थों की मर्यादा :-

क्र.	पदार्थों का नाम	अगहन से फाल्गुन तक (शीतकाल)	चैत्र से आषाढ तक (ग्रीष्मकाल)	श्रावण से कार्तिक तक वर्षाकाल
1.	बूरा	एकमास	15 दिन	7 दिन
2.	दूध दुहने के पश्चात (कच्चा)	दो घड़ी (48 मि.)	दो घड़ी (48 मि.)	दो घड़ी (48 मि.)
3.	दूध उबालने के बाद	24 घण्टे	24 घण्टे	24 घण्टे
4.	दही (गर्म दूध का)	24 घण्टे	24 घण्टे	24 घण्टे
5.	छाछ (बिलोते समय गर्म पानी डालें)	12 घण्टे	12 घण्टे	12 घण्टे
6.	छाछ (बिलोते समय ठंडा पानी डालें)	48 मिनट	48 मिनट	48 मिनट

7.	कच्चे दूध के दही से बनी छाछ	अभक्ष्य	अभक्ष्य	अभक्ष्य
8.	घी, गुड़, तेल	1 साल	1 साल	1 साल
	स्वाद बिगड़ने पर	अभक्ष्य	अभक्ष्य	अभक्ष्य
9.	सर्वप्रकार का आटा, बेसन	7 दिन	5 दिन	3 दिन
10.	सर्वप्रकार का पिसा हुआ मसाला	7 दिन	5 दिन	3 दिन
11.	नमक पिसा हुआ	48 मिनट	48 मिनट	48 मिनट
12.	पीसकर गरम किया नमक	24 घण्टे	24 घण्टे	24 घण्टे
13.	मसाला मिला नमक	6 घण्टे	6 घण्टे	6 घण्टे
14.	गर्म किया हुआ नमक मिला नमक	24 घण्टे	24 घण्टे	24 घण्टे
15.	अधिक जल वाले पदार्थ- रोटी, पुड़ी, हलवा, बड़ा, कचौड़ी, सेव, बूँदी, आदि तेल या घी में तले हुए पदार्थ-पापड़, बड़ी, सेमइयाँ आदि	12 घण्टे	12 घण्टे	12 घण्टे
16.	खिचड़ी, कड़ी, दाल-भात रायता, तरकारी, आदि	6 घण्टे	6 घण्टे	6 घण्टे
17.	बिना पानी के पकवान	7 दिन	5 दिन	3 दिन
18.	मौन वाले पकवान	24 घण्टे	24 घण्टे	24 घण्टे
19.	लाई,काजू, आदि कुटे गर्म किये मेवा	7 दिन	5 दिन	3 दिन
20.	गुड़ मिला दही/छाछ	अभक्ष्य	अभक्ष्य	अभक्ष्य
21.	मीठे पदार्थ मिला	48 मिनट	48 मिनट	48 मिनट
	चलित रस	स्वाद बदल गया हो	बदबूदार पदार्थ	सर्वथा त्याज्य है
22.	छने हुए जल की	48 मिनट	48 मिनट	48 मिनट
23.	छने हुये जल में पर्याप्त मात्रा में लोंग इलायची, सोंफ, ड़ोंड़ा आदि डालने पर जिससे कि रंग बदल जाये	6 घंटे	6 घंटे	6 घंटै
24.	प्रासुक किया हुआ जल	12 घंटे	12 घंटे	12 घंटे
25.	उबले हुये पानी की	24 घंटे	24 घंटे	24 घंटे

भक्ष्या भक्ष्य दर्पण

क्र.	पदार्थों के नाम	अभक्ष्य	भक्ष्य
1.	हल्दी,सोंठ (अदरक)	हरी	सूखने के बाद
2.	वर्षा ऋतु छोड़कर सर्व पत्ते वाला साग	हरी	वर्षाकाल छोड़कर
3.	लवंग का फूल, केशर, जावित्री	हरी	सूखने पर
4.	तुरई, ककड़ी, भिण्डी आदि फल का	अखण्ड पकाने पर	काट कर पकाने पर
5.	सुपाड़ी, इलायची,छुहारा,काजू	अखण्ड	फोड़ कर
6.	केले के पत्ते, अरबी के पत्ते तुच्छ फल और पत्ता		

व्यवहार गत सूतक पातक शुद्धि का काल प्रमाण

	अवसर	जन्म	मरण	मरण
1.	3 पीढ़ी तक	10 दिन	12 दिन	1 महीने तक का बालक 1दिन
2.	4 पीढ़ी तक	10 दिन	10 दिन	8 वर्ष तक का बालक 3 दिन
3.	5 पीढ़ी तक	5 दिन, (6दिन)		5 दिन, (6 दिन) 3 मास तक का गर्भपात 3 दिन
4.	6 पीढ़ी तक	4 दिन	4 दिन	इसके बाद जितने मास का गर्भपात हो उतने दिन
5.	7 पीढ़ी तक	3 दिन	3 दिन	3 दिन
6.	2 पीढ़ी तक	24 घण्टे	24 घण्टे	गृह त्यागी 1 दिन
7.	9 पीढ़ी तक	6 घण्टे	6 घण्टे	गृहस्थी परदेश में मरे तो खबर आने के पीछे शेष दिन
8.	10 पीढ़ी तक पुत्री, दासी दास(अपने घर)		3 दिन	
9.	गाय, भैंस आदि (अपने घर में)		1 दिन	1 दिन
10.	अनाचारी स्त्री, पुरुष के घर		सदा आशौच	

नये वस्त्र पहिनने के नक्षत्र व फल

नक्षत्र	फल	नक्षत्र	फल
अश्विन	वस्त्र लाभ	स्वाति	उत्कृष्ट भोजन
रोहिणी	धन प्राप्ति	विशाखा	जन प्रिय
पुनर्वसु	शुभ प्राप्ति	अनुराधा	मित्र-समागम
पुष्य	धन लाभ	उत्तराषाढ़ा	मिष्ठान प्राप्ति
उत्तरा फा.	धन प्राप्ति	धनिष्ठा	अन्न लाभ
हस्त	कार्यसिद्धि	उत्तरा भा.	पुत्र लाभ
चित्रा	शुभ प्राप्ति	रेवती	रत्न लाभ

सल्लेखना

लेखक-प.पू. गणाचार्य श्री विरागसागरजी महाराज

सल्लेखना का मुख्य अर्थ है कि मृत्यु को निकट जानकर गुरु सानिध्य में या अपरिहार्य परिस्थिति में गुरु के परोक्ष सानिध्य में समय रहते हुए काय (शरीर) का तथा कषाय का सम्यक् प्रकार से कृष करना, सल्लेखना है।

जिस मंदिर और उसके शिखर को सम्पूर्ण जीवन में बनाया है अंत में उस पर सल्लेखना रूप कलश चढ़ाकर समाधि रूप ध्वजा फहराना चाहिये।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और तप का निरतिचार पालन करना आराधना है और यह आराधना सल्लेखना समाधि का मुख्य प्राण है। इसके बिना सल्लेखना समाधि निष्प्राण देह अर्थात शववत् ही है अतः प्रत्येक साधकों को सल्लेखना समाधि का मुख्य उद्देश्य आराधना को समझना चाहिए।

आराधना के आगम में निश्चय एवं व्यवहार ये दो मुख्य

भेद किये हैं तथा उन्हें आराधना, आराध्य, आराधक और आराधना के फल के भेद से दोनों का चार-चार प्रकार से कथन किया है। साथ ही उनके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और तप के भेद से चार प्रकार की विशद व्याख्याएँ की हैं। आराधाना का अपर नाम विनय, भक्ति और उपासना भी है आराध्य भूत निज स्वरूप को आराधक आराधनाओं के सल्लेखना समाधि पूर्वक कर्मों के क्षय रूप आराधना के फल को प्राप्त कर सकता है अन्य नहीं।

सल्लेखना का पात्र कोई भी भव्य चाहे जो धर्मात्मा हो सकता है चाहे वह गृहस्थ हो या मुनि, पर हाँ-सल्लेखना के मुख्य पात्र मुनि ही हैं। समर्थ श्रावक अपनी शक्ति के अनुसार साधना करता हुआ अंत में मुनिव्रत अंगीकार कर सल्लेखना पूर्वक शरीर विसर्जन करता है किन्तु असमर्थ श्रावक अपनी शक्ति के अनुसार यथाशक्य श्रावक अवस्था में रहते हुये भी सल्लेखना करता है। शास्त्रों में अविरत सम्यग्दृष्टि तथा देशव्रती दोनों प्रकार के श्रावक-श्राविकाओं तथा आर्यिकाओं को भी सल्लेखना का पात्र माना गया है। तथा शेर, हाथी, जटायु, बकरा आदि तिर्यंचों के भी उल्लेख है जिन्होंने सल्लेखना पूर्वक समाधिमरण किया। आदि पुराण पर्व 6, श्लोक नं. 55, 56 में श्रीमती के जीव ने 16वें स्वर्ग में समाधी ली ऐसा भी उल्लेख है पर वास्तव में सल्लेखना एकमात्र मुनियों की ही होती है उन्हीं के मरण को पंडित मरण व पंडित मरण के भक्त प्रत्याख्यान, प्रायोपगमन और इंगनिमरण ऐसे तीन भेद किये गये हैं। प्रायोपगमन और इंगनिमरण इस पंचम काल में उत्तम संहनन के अभाव में नहीं होते हैं। एक मात्र भक्त प्रत्याख्यान मरण ही होता है। भक्त प्रत्याख्यान के सविचार-अविचार ऐसे दो भेद कहे गये हैं।

अविचार भक्त प्रत्याख्यान आपातकालीन परिस्थिति के अचानक आ जाने पर जहाँ जीवन रहने की संभावना नहीं रहती, तब पराक्रम हीन दशा में किया जाता है, किन्तु **सविचार भक्त प्रत्याख्यान** जीवन के रहते हुए अर्थात् मृत्यु काल निकट रहते हुए पराक्रमवान मुनि के द्वारा किया जाता है इसके मुख्य पात्र आचार्य और मुनि कहे गये हैं।

सल्लेखना अधिकार के मुख्य दो भेद हैं कषाय सल्लेखना और शरीर सल्लेखना। कषाय सल्लेखना को अभ्यंतर तथा भाव सल्लेखना के नाम से कहा गया है तथा शरीर सल्लेखना को बाह्य सल्लेखना या द्रव्य सल्लेखना कहा है। दोनों सल्लेखना की यथाक्रम विधि का भी वर्णन किया गया है। इस सल्लेखना विधि की चरम सीमा को प्राप्त कर योगी जब ध्यान व योग की उत्कृष्ट अवस्थिति को प्राप्त कर लेता है तब समाधि को प्राप्त होता है।

✦ ✦ ✦

समाधि संस्कार विधि

(प.पू. गणाचार्यश्री विरागसागरजी)

विजहणा - आराधक के शरीर त्याग को विजहणा कहते हैं।

क्षपक की समाधि (प्राणांत) हो जाने पर वैयावृत्य करने वाले मुनिगण जो कि धैर्यशाली हैं जिन्होंने अनेकों बार सल्लेखना को देखा एवं करवाया है शारीरिक समर्थ्य से युक्त हैं वे क्षपक के शरीर को ले जाकर उचित प्रासुक भूमि पर छोड़ आते हैं।

इस प्रकार नगर आदि के मध्य में या नगर से बाहर मरण को प्राप्त उस क्षपक के शरीर को वैयावृत्य करने वाले परिचायक मुनि जो धैर्यशील हैं, जिन्होंने अनेकों बार सल्लेखना को देखा है एवं करवाया है, जो शारीरिक सामर्थ्य से युक्त हैं वे उस शव को स्वयं ही सावधानता पूर्वक हटा देते हैं। वर्षाऋतु के चार मासों में एक स्थान पर पूर्व प्रारंभ करते समय और ऋतु के प्रारम्भ में सब साधुओं को नियम से निषीधिका की प्रतिलेखना करनी चाहिए। मरण कण्डिका में कहा है उस निषद्या की वंदना भी अवश्य करनी चाहिए। यह साधुओं का स्थिति कल्प है। भगवती आराधना में उक्त विषय को विशेषार्थ में इस प्रकार से समझाया है।

विशेषार्थ-मुमुक्षु साधुगण तो अपने शरीर में भी निरीह होते हैं, वे मृत क्षपक के शरीर को हटाने का प्रयत्न करते हैं? ऐसी शंका होने पर आचार्य उत्तर देते हैं कि पूर्व में साधुओं के जो दस स्थिति कल्पों का कथन किया है उसमें एक मास और पज्जोसवण (पर्युषण) कल्प भी है। उसके अनुसार जब साधु वर्षायोग धारण करते हैं या ऋतु का प्रारंभ होता है तब उन्हें निषीधिका दर्शन करना आवश्यक होता है। जहाँ क्षपक के शरीर को स्थापित किया जाता है उस स्थान को निषीधिका कहते हैं इसलिए निषद्या का दर्शन साधुओं का आवश्यक कर्तव्य होने से मुमुक्षु साधु निषद्या के निर्माण के लिए स्वयं प्रयत्न करते हैं।

निषधिका - निषधिका एकान्त में होना चाहिए, जहाँ दूसरे लोग उसे न देख सकते हो। नगरादि से न अति दूर और न अति निकट होनी चाहिये, विस्तीर्ण होनी चाहिए, प्रासुक होनी चाहिए तथा अति दृढ़ होनी चाहिए, वह चीटियों से रहित होनी

चाहिये, अन्दर प्रवेश कराने वाले छिद्रों से रहित होनी चाहिये, प्रकाशवाली होनी चाहिये, समभूमि होनी चाहिए, गीली नहीं होनी चाहिये, जन्तु रहित होनी चाहिये, तिरछे छिद्रवाली नहीं होनी चाहिये तथा बाधारहित होनी चाहिये।

निषधिका की दिशा - वह निषधिका क्षपक के स्थान से पश्चिम- दक्षिण दिशा में या दक्षिण दिशा में या पश्चिम दिशा में हो तो उत्तम होती है।

यदि निषधिका पश्चिम-दक्षिण दिशा में हो तो सर्वसंघ को समाधि लाभ होता है। यदि दक्षिण दिशा में हो तो संघ को आहार लाभ सुलभ होता है यदि पश्चिम दिशा में हो तो संघ का विहार सुखपूर्वक होता है तथा उपकरणों का लाभ होता है।

अपवाद दिशा-यदि उक्त दिशाओं में निषीधिका के निर्माण में बाधा हो तो क्रमशः पूर्व-दक्षिण में, पश्चिम-उत्तर में, पूरब में या उत्तर में या पूर्वोत्तर में होना चाहिये।

किन्तु पूर्व-दक्षिण दिशा में होने से 'मैं ऐसा हूँ' 'तुम ऐसे हो' इत्यादि रूप संघर्ष होता है।

निषद्या दिशा-नक्शा (चार्ट)

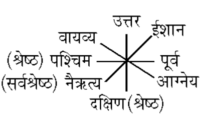

पश्चिमोत्तर दिशा में होने से कलह होता है पूर्व दिशा में होने से संघ में भेद पड़ता है। उत्तर दिशा में होने से व्याधि होती है। पूर्वोत्तर दिशा में होने से परस्पर खींचातानी होती है। यह क्रम से उक्त दिशाओं में निषद्या बनाने का फल है।

असमय में समाधि होने पर-क्षपक का जब मरण हो तो

उसी वक्त शव को ले जाना चाहिए। असमय में मरण हो तो अंग छेदन या बंधन कर जागरण करना चाहिए।

जागरण करने में निषिद्ध साधु-'1. जो भीरू हैं, 2. शैक्ष्य अध्ययनशील साधु, 3. रोगी साधु, 4. बाल साधु, 5. वृद्ध साधु, 6. उग्र तपस्वी, 7. दुःखी 8. पीड़ित, 9. अधीर, 10. आचार्य।'

जागरण के योग्य साधु - 1. जो अपार धैर्यशाली है, 2. निद्राजयी है।

बंधन करने वाले साधु - जो मुनि गृहीतार्थ होते हैं, जिन्होंने अनेक बार क्षपकों का समाधि कार्य किया है, महाबलशाली, महापराक्रमी, महासत्वशाली वे मुनि मृतक के हाथ, पैर या अंगूठे बाँधते या छेदते हैं।

छेदन या बंधन क्यों - यदि यह विधि न की जाये तो कोई मनो-विनोदी देवता मृतक को उठाकर दौड़ सकता है, क्रीड़ा कर सकता है, बाधा पहुँचा सकता है और उसे देखकर बालक आदि का चित्त चंचल हो सकता है, वे डरकर भाग सकते हैं और उनका मरण भी हो सकता है।

विशेषार्थ - वर्तमान काल में संहनन के कारण मुनिजनों को वन में रहने की आज्ञा नहीं है (इंद्रनंदी के अनुसार) अतः निर्यापकाचार्य क्षपक के शव को योग्य गृहस्थ श्रावकों को सौंप देते हैं। श्रावक गण गाजे-बाजे के साथ पालकी (विमान) में प्रभावनापूर्वक क्षपक के शरीर को विराजमान कर शव यात्रा निकालते हैं और अंत में उचित स्थान पर अपने देश काल के अनुसार विधिपूर्वक उसका अग्नि संस्कार करते हैं।

शरीर अवयवों से फलादेश

1. जितने दिन तक क्षपक का शरीर पक्षियों द्वारा क्षत-विक्षत नहीं हुआ है उतने दिन तक उस देश, राज्य में नियम से सुख शांति रहती है।
2. क्षपक का कलेवर जंगली पशु पक्षियों द्वारा जिस दिशा में खींच कर ले जाया गया है उस दिशा में संघ का बिहार करना उचित होता है।
3. यदि पशु-पक्षी क्षपक का मस्तिष्क या दांत पर्वत पर ले गये हैं तो समझना चाहिए कि क्षपक कर्मफलों से मुक्त होकर सिद्धि को प्राप्त कर चुका है।
4. यदि क्षपक के मस्तिष्क को उच्च स्थान पर पक्षी आदि ले गये हैं तो क्षपक वैमानिक देव हुआ है।
5. सम भूमि पर ले गये हैं तो ज्योतिषी या व्यंतर हुआ है।
6. गर्त (गड्ढे) में ले गये हैं तो भवनवासी देव हुआ है।

विशेष - पश्चात् तीन दिन तक निषद्या स्थल जाकर क्षपक के शरीर व शरीर के अवयवों को देखकर उनके फलों को जानना चाहिए। यद्यपि वर्तमान में अग्नि संस्कार होने के कारण उपरोक्त विधि संभव नहीं है फिर भी मुनिजन तीसरे दिन निषद्यावंदना हेतु जाते हैं और वहाँ निषद्या वंदना क्रिया करते हैं निषद्या क्रिया में भक्ति पाठ करते हैं। श्रावक गण सबसे पहले दूध या जल से शांति मंत्र पूर्वक तीन धारा देते हैं पश्चात् जल किंच्छते हैं, अस्थि चुनते हैं, उन्हें अस्थि कलश में स्थापित कर उसी स्थान पर गाड़ देते हैं तथा क्षपक की स्मृति में चबूतरा या छत्तरी में उनकी चरण पादुका स्थापित कर उनकी दर्शन-पूजन वंदन करते हैं।

इस प्रकार इस भेद सहित आराधान का संक्षेप से कथन किया। इस आराधना में जो कुछ कहा गया है वह सब श्रुतज्ञान है।

मेरे समान कौन अल्पश्रुतज्ञानी सम्पूर्ण आराधना का वर्णन करने में समर्थ हो सकता है। श्रुतकेवली भी सम्पूर्ण आराधना को नहीं कह सकते अर्थात् भगवान सर्वज्ञ ही आराधना का सर्वस्य वर्णन कर सकते हैं।

शव यात्रा विधि

1. शव को शिविका में स्थापित करें।
2. दृढ़ बंधनों से बाँधे ताकि उछले न।
3. शव की पीठ ग्राम की ओर करें।
4. निश्चित स्थान पर निश्चित मार्ग से ले जाना चाहिए।
5. मार्ग में न खड़े होना चाहिए, न पीछे मुड़कर के देखना चाहिए।
6. एक श्रावक मुट्ठी में कुश दर्भ का मूढ़ (पूला) लेकर आगे चले, न पीछे देखे और न रास्ते में रूके, निषधिका स्थान पर पहुँचते ही साथ लाये दर्भ से संस्तर बनावें, अंतराल रहित सम बनावें।
7. एक श्रावक कमण्डलु को जल से पूर्ण भर के तथा उसकी टोंटी आगे करके जल की पतली धार छोड़ता हुआ आगे चले। पुरुष वर्ग विमान के आगे-आगे चलें, महिलाएँ विमान के पीछे चलें।
8. अग्नि ले जाने का भी कहीं-कहीं विधान है।
9. दर्भ की मूठ खोलकर निषधिका पर डालें।
10. दर्भ, तृण, प्रासुक तंदुल चूर्ण (केसर से) मसूर की दाल का चूर्ण, ईंट का चूर्ण, या वृक्ष की शुष्क केशर से संस्तर सर्वत्र सम करे।

शव विसर्जन के लिये सामग्री

1.	लकड़ी का विमान		
2.	5 ताम्र कलश छोटे		
3.	कागज की पुष्प मालायें (विमान सजाने के लिये)		
4.	घास, दर्भ-दो, तीन पूला (दर्भ, कुशा)		
5.	लकड़ी की चार खूँटी		
6.	चावलों का आटा	-	2 किलो
7.	मसूर दालों का आटा	-	2 किलो
8.	पचरंगा सूत (मौली)	-	50 ग्राम
9.	चंदन लकड़ी यथा सम्भव		
	कम से कम	-	1 किलो
10.	शुद्ध घी	-	10 किलो
11.	कपूर	-	500 ग्राम
12.	श्रीफल कम से कम	-	दो झाल (200)
13.	रोली	-	250 ग्राम
14.	सामान्य लकड़ी		
	(आवश्यकता पर)	-	2 से 3 क्विंटल
15.	अष्ट द्रव्य सामग्री		
16.	अभिषेक सामग्री		
17.	जल	-	1 चरी
18.	आरती		
19.	धूप शुद्ध	-	1 किलो
20.	सूतली (शव को बाँधने के लिए)		

शव विसर्जन विधि

1. 4×4 हाथ प्रमाण सम चौकोर जमीन में एक हाथ गहरा गड्ढा खोदें, चारों ओर से बाँस या बल्ली आदि से सुरक्षा व्यवस्था बनायें। (ताकि परिक्रमा आदि के समय भीड़ को आगे बढ़ने से रोका जा सके।)

2. संस्तर सम बनावें संस्तर दर्भ से बनावें अथवा प्रासुक चावलों से अथवा मसूर की दाल के चूर्ण से बनावें।

विषम संस्तर का फल

* यदि-ऊपर विषम होगा तो आचार्य का मरण या रोग।
* यदि-मध्य में विषम होगा तो प्रधान मुनि का मरण या रोग।
* यदि-नीचे विषम होगा तो किसी भी मुनि का मरण या रोग।

3. सम संस्तर बनाकर चारों ओर चार लकड़ी की खुटी गाड़ें।
4. चारों खुटियों के आधार से चारों ओर मोली से तीन वेष्टन करें।
5. पद्मासन से शव ऊँचाई को सूतली द्वारा मापें।
6. तत् प्रमाण संस्तर पर हल्दी या रोली से टूटी या विषम न हों त्रिकोण तीन रेखायें खींचे।
7. सर्वप्रथम भूमि पर चंदन का चूरा डालें।
8. रोली से त्रिकोण बनावें। (रेखायें टूटी या विषम न हों)
9. त्रिकोण पर मसूर की दाल का आटा डालें।
10. त्रिकोण के तीनों कोनों पर उल्टे स्वस्तिक।
11. तीनों रेखाओं पर5,7,या 9 बार 'रं' लिखें।
12. त्रिकोण के मध्य में 'ॐ ह्रीं अर्हं' लिखें।
13. "ॐ ह्रीं ह्रः काष्ठ संचयं करोमि स्वाहा" मंत्र बोलकर त्रिकोणाकार की लकड़ी जमावें। पश्चात् जिस दिशा में ग्राम हो उस दिशा में स्थिर अर्थात् लेटे हुए हैं तो सिर और बैठे हुए हैं तो पीठ करके पिच्छि सहित रखना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि यदि शव को किसी प्रासुक स्थान पर छोड़कर जाते हैं तो पिच्छि शव के पास रख दें किन्तु यदि उसे अग्नि से संस्कारित करें तो उसकी पिच्छि वहीं किसी वृक्ष आदि पर टांग देना चाहिए।

पिच्छि रखने का उद्देश्य

कदाचित् क्षपक मृत्यु के समय सम्यक्त्व की विराधना कर

देव हुआ तो वह पिच्छि के साथ अपना शरीर (शव) देखकर ही यह जान लेता है कि मैं भी पूर्व भव में संयमी था इत्यादि ज्ञान पुनः सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है।

अग्नि कुंड संरचना

14. 'ॐ ह्रीं ह्रौं झ्रौं अ सि आ उ सा काष्ठे शवं स्थापयामि स्वाहा' मंत्र पढ़कर शव को काष्ठ पर स्थापित करें।
15. उल्टे क्रम से पृष्ठ भाग सिर के पीछे का भाग का अभिषेक करें एवं तीन प्रदक्षिणा दें।
16. 'ॐॐॐ रंरंरं अग्नि संधुक्षणं करोमि स्वाहा'इस मंत्र को बोलकर अग्नि लगावें।

मृत्यु नक्षत्र का फल

जघन्य नक्षत्र - 1. शतभिषा 2. भरणी 3. आर्द्रा 4. स्वाति 5. आश्लेषा 6. ज्येष्ठा (जो 15 मुहूर्त के होते हैं।)

मध्यम नक्षत्र - 1. अश्विनी 2. कृतिका 3. मृगशिरा 4. पुष्य 5. मघा 6. पूर्वा भाद्रपद 7. पूर्वा 8. पूर्वा फा. 9. हस्ता 10. चित्रा 11. अनुराधा 12. मूल 13. श्रवण 14. धनिष्ठा 15. रेवती (ये नक्षत्र 30 मुहूर्त के होते हैं।)

उत्कृष्ट नक्षत्र - 1. उत्तराषाढ़ा 2. उत्तरा फाल्गुनी 3. उत्तरा भाद्रपद 4. पुर्नवसु 5. रोहणी 6. विशाखा (ये नक्षत्र 45 मुहूर्त के होते हैं)

अशुभ टालने की विधि

17. जघन्य नक्षत्र में मरण होना संघ एवं प्रजा के लिये शांति दायक है।
18. यदि मध्यम नक्षत्र में मरण हुआ है तो जिन अर्चना करें, करावें। घास का एक प्रतिबिम्ब मृतक के निकट प्रतिलेखन कर रखें तथा जोर से तीन बार उच्च्व स्वर से कहें-यह एक साधु स्थापित करता हूँ तुम्हें सौंपता हूँ जो यहाँ रहकर चिरकाल तक जीवित रहकर तप करें।

19. उत्तम नक्षत्र में मरण होने पर दो प्रतिबिम्ब प्रतिलेखन कर रखें शेष विधि पूर्ववत् करें।
20. तृण के अभाव में-तंदुल चूर्ण, पुष्प की केशर, भस्म अथवा ईंट के चूर्ण से त्रिकोण के ऊपर 'का' नीचे 'य' अर्थात् काय लिखें।
21. पश्चात् आराधना की प्राप्ति हेतु समस्त संघ एक कायोत्सर्ग करें।
22. दाह संस्कार प्रारम्भ हो जाने पर निम्न प्रकार से भक्तियाँ पढ़ें। सिद्ध भक्ति, योगि भक्ति, शांति भक्ति और समाधि भक्ति। आचार्य की समाधि में-सिद्ध, श्रुत, चारित्र, योगि, शांति और समाधि भक्ति पढ़ना चाहिए।

निषद्या से लौटने के पश्चात् कर्तव्य

1. निषद्या स्थान से लौटने के पश्चात् उस स्थान पर जहाँ सल्लेखना हुई है वहाँ जाकर एक कायोत्सर्ग कर कहें कि हे देव! यहाँ हमारा संघ ठहरना चाहता है उसकी क्षेम कुशल के लिये स्थान दें।
2. पश्चात् यदि शव को स्पर्श नहीं किया है तो शुद्धि मात्र करें। स्पर्श होने पर शिर से पैर तक तीन धारा देकर दण्ड स्नान करें।
3. निषद्या से लौटने के पश्चात् गृहस्थों से वैय्यावृत्ति के लिये मँगाये हुए वस्त्र तथा काष्ठादि उपकरण जो लौटाने योग्य हों उन्हें यथास्थान लौटाना चाहिए।

उपवास स्वाध्याय विधि-निषेध

4. स्वगण के मुनि के मरण पर उस दिन सर्वसंग उपवास करें, उस दिन स्वाध्याय न करें।
5. परगण के मुनि के मरण होने पर उपवास भजनीय है पर स्वाध्याय न करें।

आराधक (क्षपक) स्तुति

शिवार्य ने इस सल्लेखना कराने, अनुमोदना करने, उसमें सहायक होने, आहार-औषध-स्थानादि देने तथा आदर-भक्ति प्रकट करने वालों को पुण्यशाली बतलाते हुये उनकी बड़ी प्रशंसा की है। वे लिखते हैं-

'वे मुनि धन्य हैं, जिन्होंने संघ के मध्य में जाकर समाधि मरण ग्रहण कर चार प्रकार (दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप) की आराधना रूप पताका को फहराया है।'

'वे ही भाग्यशाली और ज्ञानी हैं तथा उन्होंने समस्त लाभ पाया है जिन्होंने दुर्लभ भगवती आराधना (सल्लेखना) को प्राप्त किया है।'

'जिस आराधना को संसार में महाप्रभावशाली व्यक्ति भी प्राप्त नहीं कर पाते, उस आराधना को जिन्होंने पूर्णरूप से प्राप्त किया, उनकी महिमा का वर्णन कौन कर सकता है।'

निर्यापक स्तुति

'वे महानुभाव भी धन्य हैं, जो पूर्ण आदर और समस्त शक्ति के साथ क्षपक की आराधना कराते हैं।'

'जो धर्मात्मा पुरुष क्षपक की आराधना में उपदेश, आहार-पान, औषध व स्थानादि के दान द्वारा सहायक होते हैं, वे भी समस्त आराधनाओं को निर्विघ्न पूर्ण करके सिद्ध पद को प्राप्त होते हैं।'

'वे पुरुष भी पुण्यशाली हैं, कृतार्थ हैं, जो पापकर्मरूपी मैल को छुटाने वाले क्षपकरूपी तीर्थ में सम्पूर्ण भक्ति और आदर के साथ स्नान करते हैं अर्थात् क्षपक के दर्शन, वन्दन और पूजन में प्रवृत्त होते हैं।

क्षपक दर्शन का फल

'यदि पर्वत, नदी आदि स्थान तपोधनों से सेवित होने से 'तीर्थ' कहे जाते हैं और उनकी भक्ति-वन्दना की जाती तो तपोगुण की राशि क्षपक 'तीर्थ' क्यों नहीं कहा जावेगा? अर्थात् उसकी वन्दना और दर्शन का भी वही फल प्राप्त होता है जो तीर्थ वन्दना का होता है।'

'यदि पूर्व ऋषियों की प्रतिमाओं की वन्दना करने वालों को पुण्य होता है, तो साक्षात् क्षपक की वन्दना एवं दर्शन करने वाले पुरुष को प्रचुर पुण्य का संचय क्यों नहीं होगा? अर्थात् अवश्य होगा।'

'जो तीव्र भक्ति सहित आराधक की सदा सेवा-वैयावृत्य करता है उस पुरुष की भी आराधना निर्विघ्न सम्पन्न होती है। अर्थात् वह भी समाधि पूर्वक मरणकर उत्तम गति को प्राप्त होता है।'

क्षपक की वैय्यावृत्ति वंदना का फल अधिक क्या कहें स्वयं की आराधना की सिद्धि करना है।

समाधि मरण के प्रति जिनोपदेश

मृत्यु-चिन्तामणी पुण्यादायाते यैः प्रमादिभिः।
आत्मार्थः साधितो नाहो तेषां स्युः जन्मकोटयः।।

अहो! पुण्य से मृत्युरूप चिन्तामणि-रत्न के प्राप्त होने पर भी जो प्रमादीजन अपना प्रयोजन सिद्ध नहीं करते हैं, वे कोटि जन्मों तक संसार में परिभ्रमण करते हैं।

येन सन्मृत्युना पुंसा जीर्ण-देहादयोऽखिला।
जायन्ते नूतनाः शीघ्रं निधिवत्संमुदे न कौ।।

जिस सन्मृत्यु के द्वारा पुरुषों की जीर्ण-शीर्ण शरीर और इन्द्रियादि समस्त अंगोपांग शीघ्र नवीन हो जाते हैं, वह सन्मृत्यु निधि के समान पृथ्वी पर क्या हर्ष के लिए नहीं हैं? अवश्य है।

सत्तपोवत-योगाढ्यः त्रिजगत्सुख-सम्पदः।
सतां दातुं क्षमो येन (योहि) स मृत्युः किं न शस्यते।।

उत्तम तप, व्रत और योग से युक्त जो मृत्यु सज्जनों के लिए तीन जगत् की सुख-सम्पदा देने को समर्थ है वह मृत्यु क्या प्रशंसनीय नहीं है? अवश्य ही प्रशंसा के योग्य है।

✦ ✦ ✦

हे विद्यार्थी! जो मुख तक रहती है वह विद्या है, और जो हृदय व जीवन में आत्मसात् होती है वह बुद्धि है। अतः तुम विद्या सम्पन्न बुद्धिमान बनो।

समाधि

रचयिता-(प.पू. गणाचार्य श्री विराग सागर जी महाराज)

ज्ञान या भावना की एकाग्र परणति (ध्यान का नाम ही, समाधि) है यह दो प्रकार की होती है एक सविकल्प दूसरी निर्विकल्प। सविकल्प गुणस्थानों में पायी जाने वाली समाधि सविकल्प समाधि कहलाती है। तथा निर्विकल्प गुणस्थानों में पायी जाने वाली समाधि निर्विकल्प समाधि कहलाती है। साधक यथाशक्ति सविकल्प समाधि में वीतराग देव-शास्त्र-गुरु पंचपरमेष्ठी तथा तत्व एवं बारह भावना, समाधि भावना आदि का आश्रय लेता है। पुराण पुरुषों के जीवन वृत्तांतों का स्मरण करता है और पदस्थ जाप मंत्रों का ध्यान करता है तथा निर्विकल्प अवस्था में एक मात्र एकत्व- विभक्त चैतन्य स्वरूप निज शुद्धात्मा का आश्रय लें **"अंतः क्रियाधिकरणे तपः फलं सर्वदर्शिनः स्तुवते"** वाक्य के अनुसार तप का फल अंत क्रिया सल्लेखना या समाधि के फल को प्राप्त करता है। इस प्रकार समाधि पूर्वक मरण को समाधि मरण कहते हैं। अतः-

"तस्माद्यावद्विभवं समाधि मरणे प्रयति तव्यम्"

अपनी शक्ति और योग्यतानुसार समाधि मरण में प्रयत्न करना चाहिए। तभी हमारे द्वारा निरंतर भायी गयी भावना 'दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो, सुगइ गमणं समाहि मरणं जिणगुण सम्पत्ति होउ मज्झं' सार्थक हो सकेगी।

इस प्रकार जीवन भर किये गये सम्यक् व्रत, जप, तप, संयम रूप साधना का पर लोक सम्बन्धी यथेष्ठ फल प्रायः तभी प्राप्त होता है जब समाधिपूर्वक मरण होता है क्योंकि मरण के समय यदि धर्मानुष्ठान रूप परिणाम न होकर धर्म की विराधना रूप परिणाम हो जाते हैं तो उससे दुर्गति में जाना पड़ता है और वहाँ पूर्व भव में किये गये व्रत, तप, संयम आदि शुभ कर्मों से उपार्जित पुण्य फलों को पुण्य रूप में न भोगकर पाप रूप में भोगता

है क्योंकि कुगतियों में योग्य निमित्त के अभाव में वह सारा का सारा पुण्य पाप रूप में निमित्त के कारणों में संक्रमित हो पाप रूप हो जाता है। इस तरह दुर्गति में पड़कर प्रायः अनंतकाल तक चतुर्गति रूप संसार परिभ्रमण करने वाला हो जाता है। अतः जीवनान्त बेला में परिणामों को सम्हालने की निरंतर सजगता की महत्वपूर्ण आवश्यकता है इसके लिये निर्यापकाचार्य व निर्यापकों तथा सहयोगी हितैषी जनों को भी चाहिए कि वे क्षपक (सल्लेखनाधारी) के निकट ऐसा कोई भी कार्य या व्यवहार न करें जिससे कि क्षपक के विशुद्ध परिणामों में आंशिक भी विकृत की संभावना बन जाए।

सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और घोर तप इन चारों की आराधना अति दुष्कर है यह संसार के सर्व दुःखों को हरण करने वाली है, सुधर्म की जननी है, मुक्ति रमा की साधिका है, गुणों की खानि है श्री तीर्थंकर भगवान के मुखारविंद से प्रकट हुई है और मुनिवरों के द्वारा सेव्य हैं। ऐसी भगवती परम सुखदायिनी आराधना को हे गुणीजनों! आप लोग सन्मृत्यु की संसिद्धि के लिए-समाधि मरण की प्राप्ति के लिए अत्यंत एवं बहुत यत्नों के साथ सेवन करो-सावधानीपूर्वक चारों आराधनाओं की आराधना में दत्त-चित्त होओ।

✦ ✦ ✦

शव विसर्जन से संबंधित चित्रावली

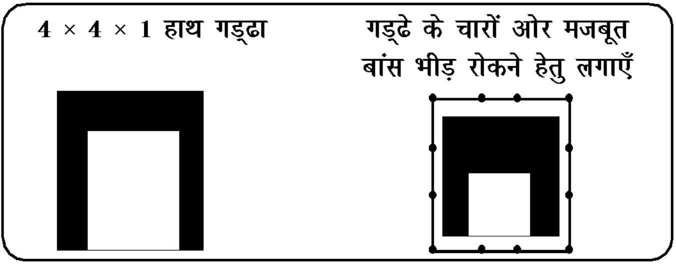

अग्नि कुण्ड हल्दी से बनायें

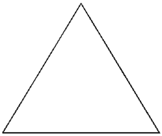

मसूल दाल से कार्य लिखें

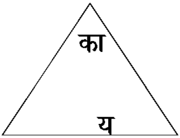

उल्टे स्वास्तिक चावल आटा से बनायें

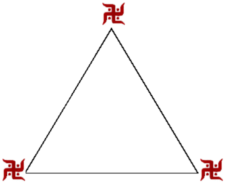

ॐ ह्रीं अर्हं लिखें

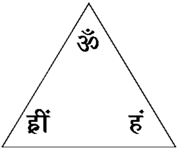

चार खूंटी

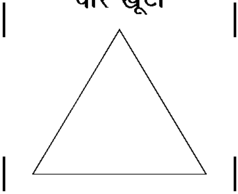

चारों खूंटी में मौली रस्सी बांधे

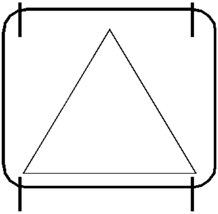

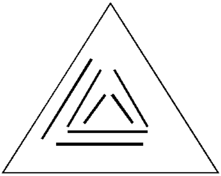

चंदन लकड़ी बिछायें

चरण छतरी

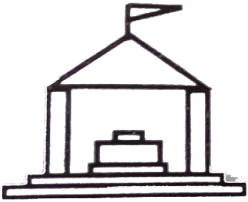

चबूतरा

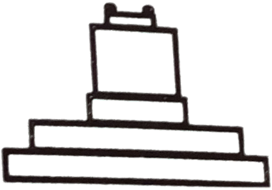

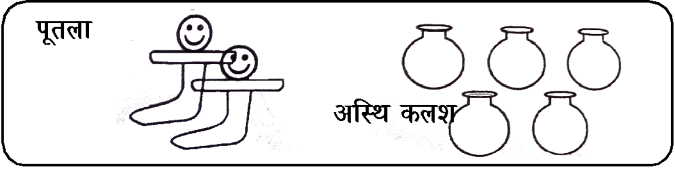

मंगल कलश में सुपाड़ी, हल्दी रखने का मन्त्र :-

ॐ ह्री अर्हं अ सि आ उ सा नमः

मंगल कलेश पूंगादि फलानि प्रभृति वस्तूनि प्रभृति वस्तूनि प्रक्षिपामीति स्वाहा।

मंगल कलश के ऊपर श्रीफल रखने का मन्त्र :-

ओं क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षैं क्षौं क्षः नमोऽर्हते भगवते श्रीमते सर्व रक्ष रक्ष हूँ फट् स्वाहा।

मंगल कलश स्थापना

ओं श्रीमत् अर्हत् परमेश्वरोपदिष्ट शिष्टेष्ट दयामूलधर्म प्रभावक यष्ट याजक प्रभृति भव्य जनानां सद्धर्म श्री बलायुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्धिरस्तु। श्री मज्जिनशासने भगवतो महति महावीर वर्द्धमान तीर्थंकरस्य धर्मतीर्थे श्री मूलसंघे कुन्द कुन्दाम्नाये मध्यलोके जम्बूद्वीपे सुदर्शन मैरो दक्षिण भागे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे भारत देशे....नगरे विविधालंकार मंडित यज्ञ मण्डपे हुण्डावसर्पिणी काले दुःखं नाम्नि पंचम कालयुगे प्रवर्त्तमाने वीर निर्वाण.... संवत्सरे मासोत्तम मासे....पक्षे....तिथौ....वासरे जिन प्रतिमायाः सन्निधौ दिगम्बर जैनाचार्य आदि-महावीर कीर्ति-विमल-विरागसागर परम्परायां मुनि, आर्यिका श्रावक श्राविकादि चतुर्विध संघ सन्निधौ। विधान निर्विघ्न समाप्त्यर्थं क्रिया शुद्धयर्थं शान्त्यर्थं पुण्य वाचनार्थं नवरत्न, गंध, पुष्पाक्षतादि बीजपुर शोभित शुद्ध प्रासुक जल परिपूरित मंगल कुम्भं मण्डपाग्रे स्वस्त्यै स्थापनं करोमि झं क्ष्वीं हं सः स्वाहा।

✦ ✦ ✦

उपसर्ग विजेता, परम पूज्य गणाचार्य श्री 108 विराग सागरजी महाराज द्वारा लिखित, सम्पादित एवं संकलित तथा श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित प्रवचन सत् साहित्य

सं.	नाम	मूल्य
1.	संस्कृत सर्वोदया टीका (वारसाणुवेक्खा) भाग 1-2	150
2.	संस्कृत रत्नत्रयवर्धिनी टीका (रयणसार) भाग 1-2	185
3.	संस्कृत श्रमणप्रबोधनी टीका (पाहुडद्वय)	
	(शोधपूर्ण साहित्य)	
4.	शुद्धोपयोग	40
5.	सम्यग्दर्शन	35
6.	आगम चक्खू साहू	25
7.	सल्लेखना से समाधि	30
8.	संत साधना के प्रेरक प्रसंग	20
9.	परम दिगम्बर जैन मुनि (हिन्दी, मराठी, कन्नड़, तमिल, अंग्रेजी)	45
10.	सर्वोदयी दिगम्बर जैन धर्म	30
11.	तीर्थंकर दिव्य दर्शन	30
12.	तीर्थंकर दर्शन	
13.	व्यसन विचार	25
14.	फूल नहीं, हैं काँटे	
15.	संस्कार सुरभि (हिन्दी, गुजराती, मराठी)	18
16.	जिनेन्द्र दर्शन, जिनेन्द्र पूजन	10
17.	आध्यात्मिक शंका-समाधान	30
18.	आध्यात्मिक तत्त्व-चर्चा	40
	(चिंतन साहित्य)	
19.	चैतन्य चिन्तन भाग-1	15
20.	चैतन्य चिन्तन भाग-2	15
21.	चैतन्य चिन्तन भाग-3	15
	(बालोपयोगी साहित्य)	
22.	बाल विज्ञान भाग-1 (हिन्दी, इंग्लिश, मराठी, कन्नड़)	10
23.	बाल विज्ञान भाग-2 (हिन्दी, इंग्लिश)	10
24.	बाल विज्ञान भाग-3	10

25.	बाल विज्ञान भाग–4	10
26.	कर्म विज्ञान भाग–1 (हिन्दी, इंग्लिश)	10
27.	कर्म विज्ञान भाग–2	10
28.	कर्म विज्ञान भाग–3	10
	(कथा साहित्य)	
29.	नैतिक कथा मंजूषा भाग–1	30
30.	नैतिक कथा मंजूषा भाग–2	30
	(अनुवाद साहित्य)	
31.	वारसाणुवेक्खा	
32.	परमरत्नार्चना संग्रह	20
33.	सामायिक पाठ (हिन्दी, गुजराती)	10
	(पद्य साहित्य)	
34.	भावों के विशुद्ध क्षण	15
35.	मुक्तकाञ्जलि भाग–1	15
36.	मुक्तकाञ्जलि भाग–2	15
37.	नव देवता निर्वाण क्षेत्र पूजा	
	(संकलित/सम्पादित साहित्य)	
38.	साधना से समाधि	20
39.	विमल नित्य पाठावलि	25
40.	आराधना	35
41.	सुभाषित संग्रह	40
42.	आप्त अर्चना	
43.	मानतुंग की अमर भक्ति (सचित्र भक्तामर)	65
44.	साधना	10
45.	अनुप्रेक्षा	10
46.	जिनागम दीप	251
47.	सम्मेद शिखर विधान	
48.	चारित्र शुद्धि व्रत	25
49.	करुणामूर्ति सन्त	100
50.	तपस्वी सम्राट	10
51.	यज्ञोपवीत विधि	
52.	साधना के सोपान	
53.	पदम् पुराण प्रश्नोत्तरी	100
54.	स्तोत्र भारती	51

(एकांकी/नाटक साहित्य)

55.	सत्यमित्र–सत्यदृष्टि	
56.	प्रद्युम्न हरण	

(पूज्य आचार्य श्री पर आधारित साहित्य)

57.	विरागाभिवंदन अभिनंदन	
58.	निस्पृही संत भाग–1–2	60
59.	विराग सेतु (महाकाव्य) (हिन्दी, गुजराती, प्राकृत) भाग–1	100
60.	विराग सेतु (महाकाव्य) भाग–2	
61.	संत काव्य की परम्परा में आचार्य विरागसागर	65
62.	कमल के महाकमल	
63.	घटनायें ये जीवन की	80
64.	दिगम्बरत्व के चितेरे	150
65.	विराग सिंधु की उर्मियाँ	15
66.	विराग वाटिका	41
67.	भक्ति की झंकार	25
68.	विराग काव्यांजलि	
69.	धर्म पीयूष	30
70.	ऐसे चलो मिलेगी राह	40
71.	दूर नहीं है मंजिल	30
72.	उड़ रे पंछी	10
73.	तीर्थंकर वर्धमान	15
74.	पहले देव–पूजा फिर काम दूजा	25
75.	तीर्थंकर ऐसे बनो	60
76.	तट की ओर	10
77.	सिर्फ दो प्रवचन	10
78.	इष्टोपदेश (प्रवचन)	
79.	मानतुंग की अमरभक्ति	150
80.	कल्याणक महोत्सव	20
81.	दान तीर्थ	20
82.	धर्म के दश सोपान	20
83.	जीवों पर दया करो, शुद्ध शाकाहार करो	20
84.	बुराईयाँ ही जेल, अच्छाईयाँ ही मुक्ति	10
85.	प्रवचन वर्षा	25
86.	कर्तव्यमेव कर्तव्यं	25
87.	श्रद्धा प्रसून	25

88.	मोक्ष की राह	25
89.	विरागामृत–1	30
90.	विरागामृत–2	
100.	समाधि तंत्र (प्रवचन)	
101.	समयोचित शिक्षायें भाग–1	20
102.	समयोचित शिक्षायें भाग–2	20
103.	समयोचित शिक्षायें भाग–3	20
104.	विराग मंथन (हिन्दी, अंग्रेजी)	5
105.	रजत पुष्प	51
106.	कहानी सबसे सुहानी	30
107.	अक्षय निधि (हिन्दी, अंग्रेजी)	10
108.	संस्कार की लहरें	20
109.	चलो चलें प्रभु दर्शन को	30
110.	आध्यात्मिक धर्म प्रवचन	30
111.	घर–घर की कहानी	30
112.	वारसाणुवेक्खा प्रवचन	125
113.	पर्यूषण निधि	15
114.	पद्‌मनंदि पंचविंशति: अधिकार 1. धर्मोपदेशामृतम्	200
115.	पद्‌मनंदि पंचविंशति: अधिकार 2. दानोपदेशम्	40
116.	पद्‌मनंदि पंचविंशति: अधिकार 3. अनित्य पञ्चाशत्	50
117.	पद्‌मनंदि पंचविंशति: अधिकार 4–5. एकत्व सप्तति तथायतिभावनाष्टकम्	85
118.	पद्‌मनंदि पंचविंशति: अधिकार 6. उपासक संस्कार	60
119.	पद्‌मनंदि पंचविंशति: अधिकार 7. देशव्रतोद्योतनम्	60
120.	पद्‌मनंदि पंचविंशति: अधिकार 8–9 सिद्धस्तुति एवं आलोचना	85
121.	मेरी भावना	
122.	आचार्य विराग सागर साहित्य दर्शन	10
123.	मेरी भावना प्रवचन	
124.	फॉर यूथ प्रोग्रेस	22
125.	रत्नकरण्डक श्रावकाचार प्रवचन भाग–1	100
126.	सामायिक पाठ प्रवचन	85
127.	विराग संध्या	20
128.	विराग अर्चना	40
129.	स्वर्ग पुष्प	30
130.	षट्‌लेश्या प्रवचन	
131.	ऐसे बनायें घर को स्वर्ग	

132. क्यूँ इतना अभिमान है.... 30

133. सिद्धों का खजाना 30

134. अपने नैतिक कर्त्तव्य 30

135. श्रुतज्ञानवर्धक विधान 20

Video D.V.D

1. आचार्य पदारोहण द्रोणगिरि
2. राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा जयन्ती, उद्गाँव
3. उपसर्ग पर उत्कर्ष की यात्रा
4. आर्यिका विशान्तश्री माताजी, समाधि
5. व्यसन मुक्ति शाकाहार अभियान
6. लोक और मध्यलोक
7. ज्योतिर्लोक और चन्द्रयात्रा
8. जेल प्रवचन
9. स्कूल प्रवचन
10. शाकाहार रैली
11. अहिंसा रैली
12. न्यायालय में प्रवचन
13. 25 दीक्षायें- श्रवणबेलगोला
14. 11 दीक्षायें-गाँधीनगर
15. 8 दीक्षायें-गिरनारजी
16. 11 दीक्षायें-किशनगढ़
17. 26 दीक्षायें-उदयपुर
18. 25 दीक्षायें-जयपुर
19. 8 दीक्षायें-इन्दौर
20. स्वर्णिम जन्म जयन्ती
21. सिद्धांत एवं आध्यात्मिक प्रवचन (वारसाणुवेक्खा, सामायिक पाठ, तत्त्वार्थ सूत्र, पद्मनंदि पंचविंशतिका भाग-1-14)
22. मातृभक्ति
23. देश के नाम कलंक बूचड़खाने

Audio DVD

1. श्यामा के लाल
2. साधना के सरताज
3. गुरुवर का जयकारा
4. प्रवचन वर्षा (दशधर्म, सोलहकारण)
5. श्री विराग सागर नमोऽस्तु ते
6. करें गुरु भक्ति
7. चलें गुरुवर के द्वार
8. गीत गुरु के गायेंगे
9. जियो हजारों साल गुरुवर
10. मेरे मन वीणा के तारे
11. विराग स्वर्णोत्सव
12. रजतवर्ष मुनिदीक्षा का
13. आचार्य श्री विरागसागरजी महाराज पूजा
14. हे सन्मति-सन्मति दो
15. स्वर्णिम जयन्ती याद रहेगी
16. प्रथम सूरि बुंदेलखण्ड के
17. गुरु नाम की धूम मची है

साहित्य प्राप्ति स्थान

1. **श्री सम्यग्ज्ञान विराग विद्यापीठ**
   चैत्यालय मंदिर, बताशा बाजार, भिण्ड (म.प्र.)
   सम्पर्क सूत्र : पं. वीरेन्द्र जैन (मो. 9754803220)
2. **आचार्य श्री विराग सागर विद्यापीठ (बी.एड.कॉलेज)**
   पुष्प विहार कॉलोनी, बीना-470113, जिला-सागर (म.प्र.)
3. **विराग फाउण्डेशन,** द्वारा-श्री अरुण कोटड़िया, II-A विक्रम नगर सोसायटी, उस्मानपुरा, अहमदाबाद-380013 (गुजरात)
4. **श्री भूपेन्द्र शांतिलाल शाह,** 12-B, वर्धमान सोसायटी, डेरी रोड, मेहसाना-2 (गुजरात) सम्पर्क सूत्र- श्री भूपेन्द्र शाह (मो. 9898494914, 9829452020)
5. **विराग महिला मंच,** बोरीवली, मुम्बई (महा.)
6. **श्रीमती पुष्पा पाटनी,** 574, शांतिनगर, जैन मंदिर के सामने, गोपालपुर वायपास, जयपुर (राज.) मो. 09460765050
7. **श्री मनीष पाटनी,** नया बाजार, 54, धर्मकांटा के पास, अजमेर (राज.) मो. 09414002306
8. **श्री तिलोक प्रिंटिंग प्रेस, विष्णु व्यास**
   मोहता हॉस्पिटल के पास, मोहता चौक, बीकानेर (राज.) मो. 9314962475
9. **राष्ट्रीय विराग युवा मंच, अध्यक्ष - श्री राजेश जैन**
   अंजनी नगर, इन्दौर मो. 09425316970
10. **राष्ट्रीय युवा मंच अध्यक्ष - श्री पंकज पाटनी**
    72, विंध्याचल नगर, एरोड्रम रोड, इन्दौर मो. 09425476665
11. **डॉ. महेन्द्र कुमार जैन 'मनुज'**
    22/2, रामगंज, जिन्सी, इन्दौर-7 मो. 09826091247